THE BOOK WAS DRENCHED

राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण

इन्द्रादयोऽपि गीर्वाण्याः, व्याकरणे कृतकौशलाः ।
तथापि पाणिनीयं हि, प्रथमं व्याकरणं स्मृतम् ।

जनवाणी प्रकाशन

किशोरीदास वाजपेयी

मूल्य ४)

प्रथम संस्करण, १०००

मुद्रक
श्रीहजारीलाल शर्मा
जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०,
३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट,
कलकत्ता - ७

PREFACE.

A distinguished son of India, Raja Rammohan Roy, declared in the early years of the 19th century that Hindi should become India's national language. Another eminent Bengalee Keshab Chandra Sen expressed the same view some years later. The case of Hindi was taken up in right earnest by Pandit Madan Mohan Malviya and then by Mahatma Gandhi. The question has been finally settled by the constituent Assembly, which has decided that Hindi in the Devnagri script shall be deemed to be the National Language of the country. It has been found that in the use of Hindi the inhabitance of some parts of the country have to face certain difficulties. In order that the rules of Hindi Grammar and usage should be made familiar to such persons, in clear and straight forward language, Pandit Kishori Dass Bajpai has written this book. He is a scholar and author of vast experience and I have no doubt that this book will enable non-Hindi speaking persons to use Hindi with reasonable correctness. At the same time I am of opinion that an organisation like the Hindi Sahitya Sammelan should appoint a committee of prominent men of letters belonging to different provinces of the country, who should explain the difficulties that they experience in the use of Hindi and an attempt should be made to simplify and modify the Grammar so as to meet these difficulties.

Allahabad,
October, 17, 1949

Amarnath Jha.

प्राक्कथन

पण्डित किशोरीदास जी प्राक्कथन वाजपेयी हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं। द्विवेदी जी के 'एकलव्य' के रूप में इन्हों ने अपने आरम्भ का साहित्यिक जीवन व्यतीत किया *। आज भी हिन्दी की आप अनवरत सेवा कर रहे हैं। इस पुस्तक को लिख कर आप ने राष्ट्रभाषा का बहुत उपकार किया है। मुझे विश्वास है कि इस को पढ़ कर कम से कम गुजरात, महाराष्ट्र और बङ्गाल के निवासी हिन्दी-व्याकरण के मूल नियमों से परिचित हो जायं गे और इस पुस्तक से हिन्दी के प्रचार में बड़ी सहायता मिले गी।

प्रयाग

१७ अक्टूबर, १६४६ — अमरनाथ झा

---

* परन्तु द्विवेदी जी ने मेरा अँगूठा नहीं कटवाया !

—कि० दा० वाजपेयी

प्रकाशकीय वक्तव्य

हिन्दी-व्याकरण का भी अपना इतिहास है। सब से पहला हिन्दी-व्याकरण एक ईसाई विद्वान् का बनाया हुआ मिलता है। उस के अनन्तर बहुत से हिन्दीव्य-ाकरण बने, जिन में पण्डित अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पण्डित कामता प्रसाद गुरु तथा श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय के लिखे व्याकरण उत्तम समझे गये।

इस के अनन्तर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने आचार्य द्विवेदी जी के अधिनायकत्व में एक 'व्याकरण-समिति' बनायी, जिसे यह काम सौंपा गया कि वह हिन्दी का एक सर्वश्रेष्ठ तथा पूर्ण व्याकरण तैयार कराये। इसी समिति ने अपने निर्देशों के अनुसार वह सुप्रसिद्ध 'हिन्दी-व्याकरण' लिखवाया, जो हिन्दी-क्षेत्र में सर्वमान्य हुआ।

इस के बहुत दिन बाद और अब से लगभग बीस वर्ष पूर्व आचार्य द्विवेदी जी और श्रद्धेय गुरु जी के जीवनकाल में ही इस पुस्तक (राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण) के लेखक ने व्याकरण-सम्बन्धी कुछ नये मौलिक तत्त्व प्रकाशित कराये, जिन के प्रति आचार्य द्विवेदी जी ने अप्रत्यक्ष सहमति भी प्रकट की थी। तब से वाजपेयी जी बराबर यह चर्चा आगे बढ़ाते रहे हैं। सन् १९४३ में आप का "व्रजभाषा का व्याकरण" प्रकाशित हुआ, जिस की भूमिका में विस्तृत रूप से हिन्दी-व्याकरण की चर्चा की गयी और उस के आधार-भूत तथा मौलिक सिद्धान्तों की उद्भावना की गयी। "व्याकरणों के व्याकरण" के रूप में इस व्याकरण (व्रजभाषा का व्याकरण) का सम्मान

हिन्दी-जगत् के विद्वानों और वैय्याकरणों ने किया और फलस्वरूप अब यह अनुभव किया जाने लगा कि हिन्दी का व्याकरण नये उद्भावित तत्त्वों के आधार पर बनना चाहिए। वाजपेयी जी से हमारा बहुत आग्रह था कि छात्रों के लिए एक पूर्ण और सुबोध व्याकरण लिख दें, परन्तु बहुत दिन तक कोई फल न निकला! और वाजपेयी जी इस विषय में मौन से थे।

बहुत दिन बाद वाजपेयी जी ने स्वतः यह व्याकरण-पुस्तक लिखी है और हमें इस को प्रकाशित कर ने का अधिकार देने की कृपा की है।

क्योंकि अहिन्दी-भाषियों को दृष्टि में रख कर यह व्याकरण लिखा गया है, अतः हिन्दी-भाषियों के लिए अनायास ही और भी अधिक सुबोध हो गया है तथा साथ ही हमारे व्याकरण-साहित्य में एक पूर्णता आ गयी है। आशा है कि हिन्दी के छात्र, विद्वान् एवं शिक्षण-संस्थाएँ, तथा अन्यान्य प्रान्तों के विद्वान् और छात्र इस का समुचित आदर करेंगे। अगर हिन्दी की कुछ भी सेवा इस से हो सकी—जिस के बारे में हमें बिना दम्भ के वास्तविक रूप में पूर्ण विश्वास है—तो हमें बहुत खुशी होगी।

कलकत्ता
१०-१२-४६

व्यवस्थापक
जनवाणी प्रकाशन

---

* आचार्य द्विवेदी के इस प्रकार के कुछ पत्र सम्मेलन-संग्रहालय, प्रयाग में सुरक्षित हैं।

भूमिका

अभी ६-७ अगस्त को दिल्ली में, 'अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-व्यवस्था परिषद्' में, दर्शक (या श्रोता) के रूप में मैं भी सम्मिलित हुआ था। वह परिषद् अहिन्दीभाषाभाषी विद्वानों की ही थी। उन्हें ही राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में अपना निर्णय देना था।

परिषद् के सभी प्रतिनिधियों ने राष्ट्रभाषा-पद के लिए एक स्वर से हिन्दी का समर्थन किया ; परन्तु कुछ प्रमुख विद्वानों ने यह भी कहा कि हिन्दी में कुछ ऐसी अव्यवस्थित चीजें हैं, जो अहिन्दी-भाषी जनता को गड़बड़ में डालती हैं। उन्होंने कहा कि हिन्दी की ये गड़बड़ या अव्यवस्थित बातें ठीक कर देनी चाहिए। ऐसा मत प्रकट करने वालों में बंगाल के श्री क्षितिमोहन सेन, औंध (सतारा) के श्री सातवेलकर तथा मिथिला के डा० अमरनाथ झा महोदय जैसे प्रमुख भाषा-विज्ञानी भी थे। जो कुछ आम लोगों ने भाषा-सम्बन्धी झंझट के बारे में कहा, उस का संक्षेप यह है :—

१—"हिन्दी में लिङ्ग-विधान सब से बड़ी दिक्कत की चीज है और उस के अनुसार क्रियाओं का रूप बदलना तो और भी अधिक जटिलता है! 'राम जाता है' और 'लड़की जाती है'! यह 'जाता है'-'जाती है' का भेद तो है ही ; पर 'ने' विभक्ति इस से भी अधिक उलझन पैदा करती है। यह सब ठीक करना चाहिए।"

२—"हिन्दी में लड़की भी कहती है कि 'मैं ने फल खाया' और लड़का भी कहता है 'मैं ने फल खाया', जब कि 'लड़की फल खाती है' और

'लड़का फल खाता है'। अर्थात् एक जगह तो कर्ता के अनुसार क्रिया में स्त्री-पुंभेद होता है और अन्यत्र समान रूप 'खाया' है! यह बड़ी अव्यवस्था है। इस पर विचार होना चाहिए।"

३—"कहीं विशेषणों के रूप में परिवर्तन होता है, कहीं नहीं। हिन्दी में विशेषण-सम्बन्धी यह गड़बड़ी अहिन्दीभाषाभाषियों को बड़ी उलझन में डालती है। इस में कुछ व्यवस्था होनी चाहिए।"

परिषद् में ही एक दूसरे बंगाली विद्वान (श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय) ने ऊपर के आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा था कि—"संसार की कोई भी भाषा ऐसी नहीं है, जिस की अपनी कोई विशेषता न हो। उस की वह विशेषता ही अन्य-भाषाभाषियों के लिए उलझन बन जाती है! हमारी बंगला भाषा में हो ऐसी चीजें हैं, जो अन्य-भाषाभाषियों के लिए कठिन समस्याएं हैं! वे लोग इन बारीकियों को समझे बिना जब बंगला भाषा लिखते-बोलते हैं, तब हम लोगों को हंसी आती है! वस्तुतः हिन्दी बहुत सरल भाषा है। बिना पढ़े और सीखे ही यह काम-चलाऊ आ जाती है। ऐसी काम-चलाऊ भाषा तो साधारण होगी ही; इस में लिंग-सम्बन्धी तथा अन्यान्य गलतियाँ भी हों गी; पर काम सब का चल जाता है। परन्तु उत्तम टकसाली हिन्दी लिखने-बोलने के लिए तो हिन्दी पढ़नी-सीखनी हो गी। जब इस में कुछ श्रम किया जाय गा, तो कोई कठिनाई सामने न रहे गी। अंग्रेजी तो हम बीस वर्ष तक पढ़ कर भी पूर्ण रूप से शुद्ध-सही नहीं लिख-बोल पाते; परन्तु हिन्दी पढ़ने-सीखने में यदि दो वर्ष भी अच्छी तरह लगाये जायं, तो किसी भी अहिन्दीभाषी के सामने कोई कठिनाई न रहे गी। भाषा का एक प्रवाह होता है। उस के

उस नैसर्गिक प्रवाह को रोकना या उलटा मोड़ना उचित नहीं है। इस तरह यदि कोई कृत्रिम भाषा बनायी जाय गी, तो वह जनता से दूर जा पड़े गी। पढ़े-लिखे लोगों की इस 'कृत्रिम भाषा' को आप चाहे फिर 'शिष्ट भाषा' कहें, चाहे 'संस्कृत हिन्दी' कहें, जनता से दूर पड़ने के कारण वह अपना सहज रूप खो दे गी। उस में बल भी न रहे गा। वह असली अर्थों में 'जन-भाषा' भी न रहे गी। इस लिए, अपनी सुविधा के लिए, भाषा में वैसा कोई मौलिक फेर-फार करना उचित नहीं है। हां, विभिन्न प्रान्त के लोग चाहे जैसी हिन्दी लिख-बोल सकते हैं। फिर, जो रूप स्वतः ग्राह्य हो जाय गा, जिसे अधिकांश जनता नैसर्गिक रूप से स्वीकार कर ले गी, वही स्थिर हो जाय गा। सारांश यह कि भाषा को अपने नैसर्गिक प्रवाह में ही बहने देना चाहिए। यह और बात है कि कहीं कुछ मोड़ आदि कर दिया जाय; बहुत सोच समझ कर! परन्तु प्रवाह को एकदम बदल देना ठीक नहीं; सम्भव भी नहीं है।"

इन विद्वानों के ये भाषण सुन कर मेरे मन में आया कि राष्ट्रभाषा का एक सुव्यवस्थित व्याकरण बनना चाहिए, जिस से सब उलझनें सुलझें और सरल हिन्दी का स्पष्ट रूप अहिन्दीभाषाभाषी जनों के सामने आए। इसी उद्देश्य को लेकर यह छोटा सा व्याकरण लिखा गया है। इस से हिन्दी का सरलतम रूप स्पष्ट होगा, अहिन्दीभाषीजन बहुत जल्दी शुद्ध हिन्दी लिखना बोलना सीखें गे और इस छोटे से व्याकरण के द्वारा हिन्दीभाषी विद्वानों को भी बहुत कुछ लाभ पहुंचे गा; क्योंकि इस में हिन्दी-व्याकरण के मौलिक तथा आधारभूत सिद्धान्तों की उद्भावना हुई है।

विशेषतः अहिन्दीभाषी बन्धुओं के लिए यद्यपि यह पुस्तक लिखी गयी

है ; पर हिन्दी की विभिन्न परीक्षाओं में यदि यह रख दी जाय गी—हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तों की 'प्रथमा' 'मैट्रिक' 'विद्याविनोदिनी' आदि परीक्षाओं में यदि इसे 'सहायक पुस्तक' भी स्वीकार कर लिया गया, तो बड़ा काम होगा।

इस पुस्तक का प्राक्कथन (अंग्रेजी में) लिख देने के लिए मैं ने माननीय पं० अमरनाथ झा महोदय से प्रार्थना की, जिस से कि अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में इस पुस्तक के सम्बन्ध में कोई धारणा बने। कारण, इस समय तक मैं, कदाचित् किसी भी रूप में, अहिन्दीभाषी प्रान्तों में पहुंचा नहीं हूं। झा महोदय के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि उन्होंने अपने वैसे व्यस्त समय से कुछ बचा कर मेरा यह काम कर दिया—मेरा और मेरी इस पुस्तक का परिचय अहिन्दीभाषी बन्धुओं को दिया। यह बहुत बड़ा काम है।

कनखल, युक्तप्रान्त
भाद्रपद शु० १४, २००६

किशोरीदास वाजपेयी

अध्याय-सूची

प्रथम अध्याय

हिन्दी की अपनी विशेषता

हिन्दी की उत्पत्ति अपभ्रंश-विशेष से और उस (अपभ्रंश) की उत्पत्ति प्राकृत-विशेष से बतलायी गयी है ; परन्तु हिन्दी की क्रियाओं को देखते एक शंका होती है ! प्राकृतों और तज्जन्य अपभ्रंशों के जो रूप उपलब्ध साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं, उन की क्रियाओं में और हिन्दी (खड़ी बोली) की क्रियाओं में मौलिक भेद है। प्राकृत-अपभ्रंशों की क्रियाएँ प्रायः तिङन्त-रूप में उपलब्ध हैं, जहाँ कर्ता या कर्म के अनुसार क्रिया में लिङ्ग-भेद नहीं होता। परन्तु हिन्दी की अधिकांश क्रियाएँ कृदन्त हैं, जहाँ कर्ता या कर्म के अनुसार बराबर लिङ्ग-भेद होता है। निः-सन्देह देश की अन्यान्य भाषाओं ने क्रिया में प्रायः तिङन्त-रूप ही

लिए हैं और हिन्दी की भी कई 'बोलियों' में तिङन्त रूप गृहीत हैं, जहाँ कर्ता या कर्म के अनुसार क्रिया में लिङ्ग-भेद नहीं होता है। परन्तु राष्ट्रभाषा का पद जिस 'बोली' को मिला है, उस में अधिकांश क्रियाएँ कृदन्त ही हैं और इसी लिए कर्ता या कर्म के अनुसार यहाँ लिङ्ग-भेद होता है। केवल सामान्य क्रिया 'है' तथा अन्यान्य क्रियाओं के आज्ञा या विधि आदि के रूप ही तिङन्त हैं, जहाँ क्रिया में वैसा लिङ्ग-भेद नहीं होता है। यह सब आगे क्रिया-प्रकरण में अत्यन्त सरल ढँग से स्पष्ट कर दिया जाय गा। यहाँ प्रारम्भ में इस का उल्लेख केवल इस लिए किया गया कि बात मूलतः समझ ली जाय।

हिन्दी ने अपना व्याकरण प्रायः संस्कृत-व्याकरण के आधार पर ही बनाया है—क्रिया-प्रवाह एकान्त संस्कृत-व्याकरण के आधार पर है ; पर कहीं मार्ग-भेद भी है। मार्ग-भेद वहीं हुआ है, जहाँ हिन्दी ने संस्कृत की अपेक्षा सरलतर मार्ग ग्रहण किया है।

क्रिया की प्रधानता

भाषा में क्रिया की प्रधानता होती है। क्रिया-भेद से ही भाषा-भेद होता है। इस लिए हिन्दी-क्रियाओं की मौलिक गति-विधि को भली भाँति समझ लेने की आवश्यकता है। संस्कृत का अनुगमन हिन्दी ने किया है ; पर सरलता लाने के

लिए कहीं उस से कुछ अलग भी हुई है। संस्कृत में तिङन्त क्रियाओं का रूप-विस्तार कितना और कैसा जटिल है ; यह उन लोगों को न मालूम हो गा, जिन्हों ने संस्कृत नहीं पढ़ी है। परन्तु संस्कृत की कृदन्त क्रियाओं का मार्ग बहुत सरल है, स्पष्ट है, संक्षिप्त है और श्रुतिमधुर भी है। एक 'कृ' (करना) धातु ही ले लीजिए और इस का, एक प्रकार का, भूतकाल लीजिए। इस में पुरुष-भेद से—

अकरोत्, अकुरुताम्, अकुर्वन्
अकरोः, अकुरुतम्, अकुरुत
अकरवम्, अकुर्व, अकुर्म

इतने रूप होते हैं—

माधव ने किया—माधवः अकरोत्
उन दोनो ने किया—तौ अकुरुताम्
उन्हों ने किया—ते अकुर्वन्

× × ×

तू ने किया—त्वम् अकरोः
तुम दोनो ने किया—युवाम् अकुरुतम्
तुम लोगों ने किया—यूयम् अकुरुत

× × ×

मैं ने किया—अहम् अकरवम्

हम दोनो ने किया—आवाम् अकुर्व

हम सब ने किया—वयम् अकुर्म

इतने रूप पुरुष तथा वचन के भेद से हुए। लिङ्ग-भेद नहीं होता है। 'राम : अकरोत्' और 'रमा अकरोत्'। दोनो जगह 'अकरोत्' है। नपुंसक-लिङ्ग में भी क्रिया-रूप यही 'अकरोत्' रहे गा। परन्तु लिङ्ग-भेद से क्रिया का रूप-भेद न होने पर भी पुरुष-भेद से जो उतने रूप-भेद हैं, उन को भी तो मन में लाइए! लिङ्ग-भेद से तो केवल तीन भेद होते; पर पुरुष तथा वचन के भेद से तो नौ भेद हुए—तिगुने! यह तो साधारण बात है। किसी-किसी क्रिया के तो एक ही काल में पुरुष-भेद से सौ-सौ वैकल्पिक रूप-भेद होते हैं। संस्कृत पढ़ने वाले को वे सब सीखने पड़ते हैं, याद करने पड़ते हैं। उन के प्रयोग में बड़ी झंझट सामने आती है। परन्तु उसी (संस्कृत) भाषा में क्रिया के कृदन्त रूप कितने सरल हैं, देखिए। उसी काल में सीधा-सादा 'त' (क्त) प्रत्यय है, सब पुरुषों में समान—

माधव ने किया—माधवेन कृतम्

उन दोनो ने किया—ताभ्यां कृतम्

उन्हों ने किया—तैः कृतम्

तू ने किया—त्वया कृतम्

तुम दोनो ने किया—युवाभ्यां कृतम्
तुम सब ने किया—युष्माभिः कृतम्
मैं ने किया—मया कृतम्
हम दोनो ने किया—आवाभ्यां कृतम्
हम सब ने किया—अस्माभिः कृतम्

सर्वत्र 'कृतम्' है। कितनी सरलता है? हाँ, यह सकर्मक क्रिया है; इस लिए कर्म के साथ आने पर 'कर्मवाच्य' हो गी और कर्म के अनुसार स्त्री-पुंभेद इस में हो गा, नपुंसक भी। जैसे—

रामेण कार्यं कृतम्
रामेण क्रिया कृता
रामेण अनुरोधः कृतः

'कार्यम्' के साथ 'कृतम्' जोड़ दिया और 'क्रिया' के साथ 'कृता' कर दिया। कितना सरल मार्ग है? वचन भी इसी तरह एक लाइन पर चलते हैं—'कार्याणि कृतानि' और 'कार्ये कृते'।

हिन्दी का मार्ग

इस सरलता के कारण ही लोग बोल-चाल में कृदन्त संस्कृत

क्रियाओं का प्रयोग अधिक करते हैं और संस्कृत साहित्य में भी कृदन्त क्रियाओं की ही अधिकता है। हिन्दी ने, इसी सरलता के कारण, कृदन्त रूप ग्रहण किया है, जहाँ 'पुरुष' के अनुसार क्रिया-भेद नहीं है; कर्ता या कर्म के अनुसार लिंग-भेद तथा वचन-भेद जरूर है, बहुत सरल। हिन्दी में 'पुरुष'-भेद के बिना सर्वत्र 'किया' सामान्य-रूप है, 'कृतम्' की तरह।

उस ने किया, तू ने किया
उन्हों ने किया, तुम ने किया
मैं ने किया, हम ने किया
लड़के ने किया, लड़की ने किया
लड़कों ने किया, सब ने किया

सर्वत्र 'किया' सामान्य रूप है, संस्कृत के 'कृतम' की तरह। कर्म के साथ प्रयोग होने पर उस (कर्म) के अनुसार लिंग-भेद तथा वचन-भेद हो गा, जो बहुत सरल है—

राम ने काम किया
राम ने क्रिया की
राम ने वे काम किये

'किया' का बहुवचन 'किये' और स्त्री-लिंग रूप 'की'। बस, और कुछ नहीं। कितनी सरलता है? इसी सरलता की विशेषता को लोगों ने हिन्दी की 'जटिलता' कहा है, इधर ध्यान न देने के कारण। यह सब आगे स्पष्ट हो गा—यही सब तो इस पुस्तक का 'अभिधेय' है। प्रारम्भ में इस लिए जिक्र हुआ कि हिन्दी ने संस्कृत का कृदन्त रूप ही प्रायः स्वीकार किया है और उसी के अनुसार अपना स्वतंत्र प्रवाह प्रकट किया है। देश की अन्यान्य समृद्ध प्रान्तीय भाषाओं ने प्रायः तिङन्त-पद्धति ग्रहण की है, जहाँ 'पुरुष'-भेद से क्रिया के रूप में भेद नहीं होता है; पर कर्ता या कर्म के लिङ्ग-भेद से उस में कोई अन्तर नहीं आता। हिन्दी-व्याकरण पढ़ते समय इस भेद को ध्यान में रखना हो गा, जिसे कि हिन्दी-व्याकरणकारों ने भी नहीं समझा है।

हिन्दी की विभक्तियाँ

जब कि हिन्दी ने संस्कृत की कृदन्त-पद्धति प्रधानतः स्वीकार की, तो तदनुरूप उसकी संज्ञा-विभक्तियाँ भी अपेक्षाकृत संख्या में कम और स्पष्ट हुईं। संस्कृत की संज्ञा-विभक्तियों से हिन्दी की संज्ञा-विभक्तियाँ बहुत ही कम हैं, गिनती की पाँच-सात! परन्तु, इतनी कम विभक्तियाँ होने पर भी, स्पष्टता हिन्दी में इतनी है, जितनी कदाचित् ही संसार की किसी दूसरी भाषा में मिले! इस

की इस सरलता का ही यह प्रभाव है कि देश भर में यह स्वतः फैल गयी और देश ने राष्ट्रभाषा के रूप में इसे स्वीकार कर लिया। इस की यह सरलता ही आगे इस व्याकरण में प्रतिफलित हो गी। इस व्याकरण से हिन्दी को हम सरल नहीं बना रहे हैं; प्रत्युत उस के स्वतः-सिद्ध सरल रूप को स्पष्ट कर रहे हैं। व्याकरण न किसी भाषा को सरल कर सकता है, न दुरूह बना सकता है। वह तो एक दर्पण-मात्र है, जिस में यथावस्थित भाषा का स्वरूप स्पष्ट दिखायी देता है।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी की संज्ञा-विभक्तियाँ

पहले हम संज्ञा (और उस के विशेषण तथा सर्वनामों) में लगने वाली उन विभक्तियों की चर्चा करेंगे, जिन से कर्तृत्व-कर्मत्व आदि तथा सम्बन्ध-विशेष प्रकट किया जाता है। ये विभक्तियाँ 'ने' 'को' 'से' 'में' 'पर' तथा 'का' हैं। इन के अतिरिक्त तीन और संश्लिष्ट विभक्तियाँ भी हैं—'आ' 'इ' तथा 'र'। 'र' यद्यपि संस्कृत से एक विभक्ति-अंश के रूप में यहाँ आया है; परन्तु इस का प्रयोग तद्धित की तरह होता है, सरलता के लिए।

इन विभक्तियों का रूप-विकास कैसे हुआ; यह सब विस्तार

से कहने-बताने के लिए न यहाँ स्थान है, न आवश्यकता ही है। जितनी जहाँ आवश्यकता हो गी, संक्षेप से कह दिया जाय गा। आगे एक-एक विभक्ति को हम अलग-अलग देखें गे और उस का कार्य-क्षेत्र भी देखें गे*।

१—'ने'

हिन्दी की यह बड़ी प्रसिद्ध विभक्ति है, जिस से अहिन्दी-भाषी बड़े-बड़े विद्वानों ने भी परेशानी प्रकट की है और कहा है कि हिन्दी की यह 'ने' विभक्ति बड़ी झंझट पैदा करती है! इस लिए, पहले इसी को लीजिए।

'ने' विभक्ति हिन्दी में केवल कर्ता कारक में लगती है; जब कि क्रिया भूतकाल में हो; कर्म-वाच्य या भाव-वाच्य प्रयोग हो। हिन्दी में भूतकाल की क्रिया कृदन्त है। संस्कृत में कृदन्त भूतकालिक क्रिया जब कर्मवाच्य या भाववाच्य होती है, तब कर्ता में तीसरी विभक्ति लगती है। संज्ञा में सब से पहला स्थान है अकारान्त का, बालक, नर, संसार आदि का। 'अ' प्रथम स्वर है न! संस्कृत में ऐसी संज्ञा के एकवचन में 'बालकेन'

* इन विभक्तियों का निकास-विकास आदि जानने की इच्छा हो, तो 'हिन्दी-निरुक्त' देखिए, जो 'जनवाणी-प्रकाशन' की एक मणि है।—प्रकाशक

जैसे रूप को हिन्दी ने देखा और इस के 'एन' को निकाल कर 'वर्ण-व्यत्यय' से 'ने' बना लिया। इस 'ने' का प्रयोग भी कर्ता कारक में ठीक उसी जगह होता है, जहाँ संस्कृत में भूतकालिक कृदन्त क्रिया होने पर, कर्ता कारक में वह 'एन'! देखिए:—

बालकेन ग्रन्थः पठितः—बालक ने ग्रन्थ पढ़ा
बालकेन संहिता पठिता—बालक ने संहिता पढ़ी
बालकेन ते ग्रन्थाः पठिताः—बालक ने वे ग्रन्थ पढ़े

ये कर्म-वाच्य प्रयोग हुए। अब भाव-वाच्य देखिए—
मैं ने अब तक सहा—मया अद्यावधि सोढम्
हम ने अब तक सहा—अस्माभिः अद्यावधि सोढम्
तू ने अब तक सहा—त्वया अद्यावधि सोढम्
तुम ने अब तक सहा—युष्माभिः अद्यावधि सोढम्
बालक ने अब तक सहा—बालकेन अद्यावधि सोढम्
बालकों ने अब तक सहा—बालकैः अद्यावधि सोढम्

सर्वत्र भाववाच्य 'सोढम्' है। कर्म न होने से, अकर्मक अवस्था में, कृदन्त भाववाच्य। हिन्दी में नपुंसक लिंग का बखेड़ा है ही नहीं; पुल्लिंग या स्त्री-लिंग। संस्कृत में सामान्ये नपुंसक लिंग होता है—'सोढम्' और हिन्दी में सामान्य प्रयोग (भाववाच्य

में) पुल्लिंग एकवचन रहता है—'सहा'। संस्कृत में, ऐसे स्थल पर कर्ता में तीसरी विभक्ति के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं ; प्रकृति-भेद से। परन्तु हिन्दी ने यह बखेड़ा भी दूर कर दिया है—सर्वत्र 'ने'। कितनी सरलता है ?

संस्कृत में तीसरी विभक्ति के वे सब रूप कर्ता कारक में ही नहीं ; करण कारक में तथा हेतु आदि प्रकट करने में भी काम आते हैं। हिन्दी ने भ्रम को अवसर न देने के लिए अपनी 'ने' विभक्ति केवल कर्ता कारक में ही प्रयुक्त की है ; और कहीं भी नहीं। कितनी सरलता और स्पष्टता है ? सो, भूतकाल में, क्रिया के कर्मवाच्य या भाववाच्य होने पर, हिन्दी के कर्ता कारक में 'ने' विभक्ति लगती है ; अन्यत्र नहीं।

संस्कृत में यह भूतकालिक 'त' प्रत्यय जब कर्मवाच्य या भाववाच्य न हो कर कर्तृवाच्य होता है, तब वहाँ कर्ता में तीसरी विभक्ति नहीं लगती ; इसी लिए हिन्दी भी ऐसी क्रियाओं में 'ने' का प्रयोग नहीं करती। अकर्मक क्रियाओं के 'सुप्त' 'उत्थित' 'स्थित' आदि कर्तृवाच्य रूप हैं, जहाँ तीसरी विभक्ति नहीं लगती, हिन्दी में भी 'ने' यहाँ नहीं लगती है, भूतकाल होने पर भी। परन्तु कर्ता के अनुसार क्रिया में लिङ्ग-परिवर्तन होता है—

बालकः सुप्तः—बालक सोया

बालिका सुप्ता—बालिका सोयी

वचन-भेद भी कर्ता के अनुसार हो गा—

बालकाः सुप्ताः—बालक सोये

बालिकाः सुप्ताः—बालिकाएँ सोयीं

परन्तु 'पुरुष'-भेद से क्रिया में कोई भेद न हो गा। कृदन्त क्रिया है न! देखिए—

अहं सुप्तः—मैं सोया

त्वं सुप्तः—तू सोया

सः सुप्तः—वह सोया

सो, स्पष्ट हुआ कि संस्कृत कृदन्त क्रियाओं के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य रूपों के साथ कर्ता कारक में जहाँ तृतीया (विभक्ति) के विभिन्न रूप काम में लाये जाते हैं, वहीं हिन्दी ने उस के एक अंश 'ने' का प्रयोग स्वीकार किया है। जहाँ कृदन्त भूतकाल में तृतीया नहीं लगती, हिन्दी भी वहाँ 'ने' नहीं लगाती है। परन्तु संस्कृत में तृतीया विभक्ति इस तरह के कर्ता कारक के अतिरिक्त अन्यत्र भी (करण तथा हेतु आदि में) प्रयुक्त होती है ; जब कि हिन्दी, स्पष्टता और असन्दिग्धता के लिए, 'ने' का प्रयोग और कहीं भी नहीं करती। मैं समझता हूं, इससे अधिक सरलता तथा स्पष्टता और हो ही नहीं सकती।

जब कह दिया गया कि केवल भूतकाल के कर्मवाच्य या भाववाच्य प्रयोग होने पर कर्ता कारक में 'ने' विभक्ति लगती है ; तो स्पष्ट ही हो गया कि अन्यत्र कहीं भी कर्ता कारक में हिन्दी 'ने' नहीं लगाती। वर्तमान काल में—

राम जाता है, लड़की जाती है

भविष्यत् में—

राम जाय गा, लड़की जाय गी

आज्ञा में—

राम जाय, लड़की जाय

इसी तरह सर्वत्र समझिए। सो, 'ने' विभक्ति बहुत स्पष्ट है ; इस का कार्य-क्षेत्र भी सुनिश्चित है। इस की जगह और विभक्ति लग नहीं सकती, न यह हट सकती है। अपनी जगह छोड़ यह अन्यत्र कभी जाती नहीं है।

ओं (ों) विकरण

प्रकृति और प्रत्यय के बीच में जो शब्दांश आ जाता है, उसे 'विकरण' कहते हैं। 'लड़के ने' एकवचन है ; बहुवचन में 'लड़कों ने' होता है। 'लड़का' के 'आ' को 'ए' हो जाता है, जब कोई विभक्ति परे हो ; यह आगे मालूम हो गा। परन्तु 'लड़कों ने' और 'लड़कियों ने' आदि में यह 'ओं' बीच में जो दिखायी

देता है, 'विकरण' है। संज्ञा या सर्वनाम से परे जब कोई विभक्ति आती है और बहुवचन प्रयोग करना होता है, तब बीच में यह 'ओं' विकरण आ जाता है। इस के आ जाने से अकारान्त (बालक आदि) तथा आकारान्त (लड़का आदि) पुल्लिंग संज्ञाओं के अन्त्य स्वर का लोप हो जाता है और तब वह स्वर-रहित व्यंजन 'ओं' से जा मिलता है—बालक ने—बालकों ने, लड़के ने—लड़कों ने।

इकारान्त और ईकारान्त संज्ञाओं के अन्त्य स्वर (इ और ई) का 'इय्' हो जाता है—कवि ने—कवियों ने, नदी में—नदियों में। उ या ऊ अन्त में हो, तो 'उव्' हो जाता है और 'ओं' में व् स्पष्ट श्रुत न होने के कारण लुप्त हो जाता है—प्रभु ने—प्रभुओं ने, स्वयंभू ने—स्वयंभुओं ने, बाबू ने—बाबुओं ने, झाड़ू से—झाड़ुओं से इत्यादि।

संस्कृत के तत्सम आकारान्त शब्द 'ओं' विकरण आने पर ज्यों के त्यों रहते हैं—माता ने—माताओं ने, राजा ने—राजाओं ने, लता से—लताओं से आदि। यह साधारण परिचय है। और जहाँ जो परिवर्तन हो गा, स्पष्ट समझ में आ जायगा।

इस तरह ने, को, से, का, में तथा पर विभक्तियाँ लगने पर,

बहुवचन की विवक्षा में 'ओं' विकरण उपस्थित होता है। अर्थात् संज्ञा-सर्वनाम आदि का बहुवचन प्रयोग करने पर यदि विभक्ति सामने है, तो बीच में 'ओं' आ जाता है। दूसरे शब्दों में यह 'ओं' बहुवचनत्व प्रकट करता है। इसे समझ लेने पर फिर संज्ञा-सर्वनामों के 'रूप' याद करने की जरूरत न पड़ेगी।

२—'को'

हिन्दी की यह 'को' विभक्ति अत्यधिक व्यापक और महत्त्व-पूर्ण है। इस का प्रयोग कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, अधिकरण आदि विभिन्न कारकों में होता है; परन्तु सन्दिग्धता को कहीं अवसर नहीं मिलता! विभिन्न सम्बन्धों को प्रकट करने के लिए भी इस का प्रयोग होता है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

कर्ता कारक में—

१—राम को अभी सन्ध्या करनी है

२—गोविन्द को बी० ए० पास करना है

३—हम को राम से मिलना है

४—राम को बहन के लिए पुस्तकें लानी हैं

५—तुम को वह काम करना ही हो गा

ऊपर के वाक्यों में 'करनी है' 'करना है' 'लानी हैं' 'करना

होगा' ये चार क्रियाएँ 'कर्मवाच्य' हैं— 'सन्ध्या करनी' 'पास करना' 'पुस्तक लाना' 'काम करना'। कर्म के अनुसार उन के लिङ्ग-वचन हैं। केवल 'मिलना' क्रिया भाववाच्य है। सर्वत्र अनिवार्य्यता या अवश्य-कर्तव्यता प्रकट है। 'है' आदि सहायक क्रिया के रूप में तिङन्त हैं, जो कर्म के अनुसार लिङ्ग-भेद नहीं करतीं। संस्कृत में ऐसी जगह कर्ता में तीसरी विभक्ति लगती है और सहायक क्रिया वहाँ भी तिङन्त होती है, जो कर्म के अनुसार लिङ्ग-भेद नहीं करती है—

'रामेणाधुना सन्ध्या करणीयाऽस्ति'

'सन्ध्या करणीया' और 'कार्यं करणीयम्'। परन्तु 'अस्ति' ज्यों की त्यों रहे गी—'सन्ध्या करणीया अस्ति' और 'कार्य-करणीयमस्ति'—'सन्ध्या करनी है' और 'काम करना है'। संस्कृत में सहायक क्रिया 'अस्ति' तिङन्त है, उसी तरह यहाँ 'है' तिङन्त है।

हिन्दी में क्रिया की अनिवार्य्यता या अवश्यकर्तव्यता प्रकट करने के लिए कर्ता में 'को' विभक्ति लगती है और क्रिया का कर्मवाच्य प्रयोग होता है। संस्कृत के 'अनीय' प्रत्यय का मध्य अंश ले कर हिन्दी ने अपना 'न' कृदन्त प्रत्यय बना लिया है, जो पुल्लिङ्ग में 'ना' तथा स्त्रीलिंग में 'नी' के रूप में प्रयुक्त होता है—'काम करना है' और 'सन्ध्या करनी है'। अनिवार्य्यता या

अवश्यकर्तव्यता को अत्यधिक स्पष्ट करने के लिए हिन्दी ने यहाँ 'ने' विभक्ति न लगा कर 'को' को ग्रहण किया। संस्कृत में सर्वत्र वही तृतीया विभक्ति चलती है। बस, इतना भेद समझिए।

कर्मकारक में 'को' विभक्ति

'को' विभक्ति का प्रयोग कर्म-कारक में भी होता है—

१—मैं राम को देखता हूं

२—सीता ने राम को देखा

३—मैं तुमको देखूँ गा

उपर्युक्त तीनों वाक्यों में 'को' कर्मकारक में प्रयुक्त है। परन्तु यह बात नहीं कि कर्मकारक में 'को' की अनिवार्य्य उपस्थिति हो—

१—मैं घर देखता रहूं गा

२—तू पुस्तक देख रहा है

३—लड़के तमाशा देखें गे

यहाँ तीनो वाक्यों में कर्मकारक निर्विभक्तिक स्पष्ट है।

कहाँ कर्म के साथ 'को' विभक्ति लगती है, कहाँ नहीं; यह सब भाषा-सम्पर्क से और साहित्य-अवगाहन से स्वतः विदित हो जाता है।

जब साधारण दशा की अकर्मक क्रिया प्रेरणा में सकर्मक हो

जाती है—मूल क्रिया का असली कर्ता जब कर्म की तरह प्रयुक्त होता है—, तब उस 'गौण कर्म' में 'को' अवश्य प्रयुक्त होती है—

१—यशोदा कृष्ण को सुलाती है
२—मा बच्चे को जगाती है
३—मैं बच्चों को रुलाऊँ गा नहीं

ये वाक्य इस तरह न ठीक रहें गे—

१—यशोदा कृष्ण सुलाती है
२—मा बच्चा जगाती है
३—मैं बच्चे रुलाऊँ गा नहीं

परन्तु बेजान 'कर्म' निर्विभक्तिक आता देखा जाता है—

१—तू ढेला उठाता है
२—राम ने कपड़ा उठाया था
३—मैं पुस्तकें न उठाऊँ गा

साधारण दशा की सकर्मक क्रिया प्रेरणा में आ कर जब 'द्विकर्मक' हो जाती है, तो 'गौण कर्म' में 'को' विभक्ति लगती है—

१—यशोदा कृष्ण को लड्डू खिलाती है।
२—गौ बच्चे को दूध पिलाती है।
३—मा बच्चे को कपड़े पहनाती है।

ऊपर के वाक्यों में 'लड्डू' 'दूध' तथा 'कपड़े' मुख्य कर्म हैं, जो निर्विभक्तिक प्रयुक्त हुए हैं। 'गौण कर्म' 'को' विभक्ति के साथ हैं।

भूत काल में सकमक क्रियाएँ हिन्दी में कर्मवाच्य भी चलती हैं और भाववाच्य भी, कभी कर्तृवाच्य भी। भूत काल में सकर्मक क्रियाएँ कर्तृवाच्य तभी होती हैं, जब वे किसी अकर्मक सहायक क्रिया के साथ हों और उस (सहायक क्रिया) का सहारा अन्त में हो। इसके अतिरिक्त गत्यर्थक धातुओं का (जाना-आना आदि का) भूत काल में कर्तृवाच्य प्रयोग होता है। और सब सकर्मक क्रियाएँ भूत काल में या तो कर्मवाच्य होंगी, या भाव-वाच्य। यहाँ हिन्दी ने संस्कृत से किञ्चित् भिन्न मार्ग ग्रहण किया है। संस्कृत में सकर्मक क्रिया का प्रयोग (कर्मकारक की उपस्थिति में) कभी भाववाच्य होता ही नहीं है।

तो, सकर्मक क्रिया का भूतकाल में जब भाववाच्य प्रयोग होता है, तो कर्म के साथ 'को' का प्रयोग आवश्यक होता है—

१—यशोदा ने दूर से कृष्ण को देखा।

२—कृष्ण ने भाई को देखा।

३—बहनों ने भाई को देखा।

४—भाइयों ने बहन को देखा।

५—हम ने राम को देखा।

६—तुम ने हम को देखा।

सर्वत्र भाववाच्य सकर्मक क्रिया भूतकाल में है। संस्कृत में भाववाच्य क्रिया सदा नपुंसक लिङ्ग एकवचन रहती है, हिन्दी

में सदा पुलिङ्ग एकवचन। नपुंसक लिङ्ग हिन्दी में है ही नहीं। 'सामान्ये' सदा पुल्लिङ्ग एकवचन होता है। ऊपर के वाक्यों में क्रिया न कर्ता के अनुसार है, न कर्म के। वह स्वतन्त्र रूप से स्थित है—भाववाच्य। इसी लिए कर्म में 'को' प्रयुक्त है।

यदि भूतकाल की क्रिया कर्मवाच्य हो, तो फिर कर्म के साथ 'को' का प्रयोग न हो गा—

१—तुम ने लड़का कहीं देखा।

२—लड़की ने फल खाया।

३—लड़के ने रोटी खायी।

यहाँ क्रिया कर्मवाच्य है—'लड़का देखा' 'फल खाया' 'रोटी खायी'। 'को' विभक्ति यहाँ न लगे गी।

परन्तु—

'भेड़ को भेड़िया खा गया।

यहाँ 'भेड़' कर्म के साथ 'को' है; क्योंकि यह कर्मवाच्य नहीं है, कर्तृवाच्य है—'भेड़िया खा गया' और 'शेरनी खा गयी' उसी 'भेड़ को'! 'वाच्य'-प्रकरण में अधिक स्पष्टता आ जाय गी। यहाँ इतना समझ लीजिए कि कर्मकारक में भी 'को' का प्रयोग होता है।

सम्प्रदान; सम्प्रदान में भी 'को' का प्रयोग होता है और आवश्यक रूप से होता है—

१—राम को मा ने दूध दिया।

२—हम सब को ईश्वर ने विवेक-बुद्धि दी है।

३—बच्चों को फल अवश्य देने चाहिए।

सर्वत्र सम्प्रदान में 'को' का प्रयोग है। ऐसी जगह यदि कर्म में भी 'को' का प्रयोग हो, तो अच्छा न लगे गा।

अधिकरण कारक में भी 'को' आप देख सकते हैं—

१—रात को आठ बजे सभा हो गी।

२—ता० १५ को हम लखनऊ पहुंचें गे।

३—सन्ध्या को सात बजे आना।

यहां अधिकरण-अर्थ में 'को' का प्रयोग है।

नैसर्गिक वेग या उद्रेक ; नैसर्गिक वेग या उद्रेक प्रकट करना हो, तो उस के अधिकरण में प्रायः 'को' का प्रयोग होता है ; अर्थात् वे वेग या उद्रेक जिस में हों, उस के साथ 'को' विभक्ति लगती है—

१—राम को भूख लगी है।

२—लड़कियों को प्यास लगी है।

३—तुम को क्रोध आ गया।

४—बच्चे को दस्त आ रहे हैं।

भूख, प्यास, क्रोध तथा दस्त स्वतः प्रवृत्त हैं और ये 'कर्ता' हैं। इन का सम्बन्ध 'राम', 'लड़कियों', 'तुम' तथा 'बच्चे' से

है, जिन के आगे 'को' विभक्ति लगी हुई है। 'स्नेह' आदि स्वतः प्रवृत्त हों, तब उन के भी आधार में 'को' लगे गी—'बच्चों पर मा को स्नेह होता ही है'। साधारण दशा में—'बच्चों पर मा का स्नेह अद्‌भुत होता है' ऐसा हो गा।

परन्तु प्रयत्नपूर्वक या विवेक से भाव आये, तब 'को' का प्रयोग नहीं होता है—

१—गुरुजनों पर राम की श्रद्धा थी।

२—आचार्य द्विवेदी का साहित्यिक जनों पर स्नेह रहता था।

३—माता-पिता पर विश्वास करो।

यदि उद्रेक की विधेयता विवक्षित न हो, तो साधारणतः, सम्बन्ध आदि से, 'को'-रहित, प्रयोग होते ही हैं—

१—तुम्हारी प्यास क्या शान्त नहीं हुई?

२—बच्चों को भूख बहुत तेज होती है

३—सिंह का क्रोध गम्भीर होता है

क्षमा आदि के योग में भी 'को' का प्रयोग होता है—

१—राम ने उस लड़के को क्षमा कर दिया

२—पृथ्वीराज ने शत्रु को माफ कर के राष्ट्र का अपराध किया था

जिसे क्षमा या माफ किया जाता है, उसी के साथ 'को' का प्रयोग होता है।

इस के अतिरिक्त और भी बहुत जगह 'को' का प्रयोग होता है ; जैसे—'राम को यह ज्ञात नहीं कि कल सभा हो गी' और 'बच्चे को क्या मालूम कि विष न खाना चाहिए'। इन दोनो वाक्यों में कर्ता कारक के साथ 'को' का प्रयोग है। जिसे कुछ 'ज्ञात' या 'मालूम' हो, वह कर्ता ही है। 'ज्ञात होना' और 'मालूम होना' सकर्मक क्रियाएँ हैं। इस तरह अनन्त भाषा-विस्तार में विभिन्न रूप से 'को' विविध कार्य करने में समर्थ है। परन्तु कहीं कोई भ्रम या सन्देह की गुंजाइश नहीं।

३—'से'

'को' की ही तरह हिन्दी की 'से' विभक्ति भी बहुत व्यापक है। कुछ उदाहरण लीजिए—

कर्ता कारक ; कर्ता कारक में 'से' विभक्ति लगती है, जब अशक्ति आदि प्रकट करना हो। ऐसी स्थिति में क्रिया कर्मवाच्य या भाववाच्य होती है—

१—मुझ से सूखी रोटियाँ नहीं खायी जातीं।

२—दाँत में दर्द है ; इस लिए हम से पानी नहीं पिया जाता।

३—गले में इतना कष्ट है कि लड़की से भात भी नहीं निगला जाता।

ऊपर तीनों वाक्यों में सकर्मक क्रिया कर्मवाच्य है और अशक्ति प्रकट करनी है ; इस लिए कर्ता में 'से' है। भाववाच्य देखिए—

१—मुझ से उतने सबेरे नहीं उठा जाता

२—मा से खड़ा न हुआ जायगा

३—भाई, मुझ से रोया तो जाता नहीं।

तीनो वाक्य भाववाच्य क्रिया के साथ हैं और कर्ता में 'से' विभक्ति लगी है।

कर्मकारक : जब कोई किसी से कुछ कराता है, तब (प्रेरणा में) 'प्रयोज्य' कर्ता के साथ 'से' विभक्ति हिन्दी में आती है—

१—मा लड़के से कपड़े उठवाती है

२—बच्चे मा से झूला डलवाते हैं

३—पत्नी पति से साड़ी मँगवाती है

मा, बच्चे तथा पत्नी 'प्रेरक' कर्ता हैं और 'लड़के' 'मा' तथा 'पति' हैं 'प्रयोज्य' कर्ता, जिनके साथ 'से' का प्रयोग है। इसी तरह भूत आदि काल में—'मा ने बच्चों से कपड़े उठवाये थे' रूप होंगे।

करण कारक : करण कारक में तो 'से' का प्रयोग प्रसिद्ध है ही—

१—राम चाकू से कलम बनाता है

२—प्रताप ने भाले से शत्रु-संहार किया

३—शिवाजी ने अपनी बुद्धि से काम लिया

'हेतु' में : करण तथा 'हेतु' में अन्तर है—

१—आपसी बैर से यदु-कुल का संहार हुआ

२—स्नेह-सौहार्द से सब काम बन जाते हैं

३—वर्षा न होने से अकाल पड़ गया

अपादान : बहुत स्पष्ट है कि अपादान में 'से' का प्रयोग होता है—

१—भिखमंगों को शहर से निकाल दिया गया

२—कांग्रेस से तो श्री सुभाषचन्द्र बोस तक को निकाल दिया गया था

३—वस्तुतः भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे आया है

यहाँ अपादान में 'से' का प्रयोग है।

कर्मकारक : कर्मकारक में भी 'से' का प्रयोग होता है ; परन्तु जब क्रिया द्विकर्मक हो। द्विकर्मक क्रिया के साथ मुख्य कर्म में नहीं, गौण कर्म में 'से' लगती है—

१— मैं तुम से एक बात कहूँगा

२—पर, तुम हम से पूछोगे क्या ?

३—तुम हम से अपनी सब बातें छिपाते हो

यहाँ गौण कर्म में 'से' विभक्ति लगी है।

४—'में' और 'पर'

'में' और 'पर' का प्रयोग साधारणतः अधिकरण कारक में

होता है। यदि 'अन्तः' या 'भीतर' से मतलब हो, तभी 'में' लगती है और 'ऊपर' से मतलब हो, तो 'पर' का प्रयोग होता है। 'पर' शायद 'ऊपर' से ही कट आया है और विभक्ति-रूप से प्रयुक्त होने लगा है। उदाहरण—

१—घर में कितने जन हैं?

२—अपने कपड़े पेटी में रख लो

३—गौ के थनों में अभी दूध भरा है

'पर' का प्रयोग—

१—छत पर लड़के खेल रहे हैं

२—मेज पर सब पुस्तकें हैं

३—नाक पर मक्खी बैठ गयी।

कभी दोनो का साझे का विषय भी देखा गया है—

राम पर मेरा पूरा विश्वास है

राम में मेरा विश्वास अटूट है

अधिकरण-भिन्न स्थलों में 'पर' का लाक्षणिक प्रयोग होता है—'बुद्धि पर जोर दीजिए' अर्थात बुद्धि से काम लो।

५—'का'

हिन्दी में साधारणतः 'का' का प्रयोग सम्बन्ध प्रकट करने में होता है, जहाँ संस्कृत की 'षष्ठी' विभक्ति लगती है। सम्बन्धी के अनुसार बहुवचन (पुल्लिंग) में यह 'के' तथा (स्त्री-लिंग में)

'की' बन जाता है। 'का' के ये विचित्र खेल आप को अटपटे जान पड़ेंगे ; पर बहुत सरल हैं। प्रकृति से अलग 'का' का प्रयोग होता है, क्योंकि मूलतः यह एक विभक्त्यंश ही है ; परन्तु हिन्दी ने इसका प्रयोग तद्धित की तरह किया है। हिन्दी ने जो ने, को, से, में, पर आदि विभक्तियाँ ली हैं, वे स्त्री-लिंग में और पुल्लिङ्ग में तथा एकवचन में और बहुवचन में ज्यों की त्यों (अविकृत) रहती हैं। केवल 'का' में ही वैसा परिवर्तन होता है। इस से स्पष्ट है कि सम्बन्ध प्रकट करने के लिए हिन्दी ने तद्धित-पद्धति से काम पहले लिया। बाद में फिर वह (तद्धित अंश) अलग कर के अन्य विभक्तियों की तरह लिखा जाने लगा और एक 'विभक्ति' समझा जाने लगा। इसी लिए हम भी विभक्तियों में ही इसका परिचय दे रहे हैं।

संस्कृत में सम्बन्ध प्रकट करने के लिए षष्ठी विभक्ति आती है, जो अन्य विभक्तियों की तरह समान रहती है, सम्बन्धी के अनुसार बदलती नहीं है—

भवतः गहम्—भवतः गृहाणि

भवतः पुत्रः—भवतः पुत्री

सर्वत्र 'भवतः' है ; पर हिन्दी में—

आप का घर—आप के घर

आप का पुत्र—आपकी पुत्री

यों 'का' के रूप-भेद हैं ; तद्धित होने से ; जैसे—

भवदीयं गृहम्—भवदीयानि गृहाणि

भवदीयः पुत्रः—भवदीया पुत्री

संस्कृत में षष्ठी विभक्ति से तथा तद्धित प्रत्यय से, दोनो तरह से, सम्बन्ध प्रकट किये जाते हैं। कोई यह नहीं कहता कि 'गृहम्' के साथ 'भवदीयम्' है, तब 'गृहाणि' के साथ 'भवदीयानि' क्यों? 'भवदीयः' तथा 'भवदीया' आदि सब चलते हैं। इस तरह, तद्धित से सम्बन्ध प्रकट करने में, सम्बन्धी के अनुसार एकवचन और बहुवचन में तथा पुल्लिङ्ग, स्त्री-लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में प्रत्ययांश रूप बदलता है। साथ ही षष्ठी विभक्ति भी चलती है। कोई कठिनाई नहीं।

परन्तु हिन्दी में—

आप की लता

आप का वृक्ष

आप के बच्चे

यों 'आप की' 'आप का' 'आप के' ये तीन भेद भी खटकते हैं लोगों को! कहते हैं, बहुत झमेला है! न हिन्दी पढ़ने में चार दिन लगाये, न समझने में ; तब कठिनता तो मालूम ही होगी। वैसे बहुत सरल चीज है। और, इस 'का' को अब

निकाला भी कैसे जाय? फिर 'तुम्हारा' 'तुम्हारे' तथा 'तुम्हारी' को क्या करोगे? यहीं से तो 'क' का विकास है।

खैर, 'का' कोई झमेला नहीं है। सब स्पष्ट है। जो लोग दूर ही खड़े हो कर कठिनता प्रकट करेंगे, उन्हें तो सब कठिन ही दिखाई देगा। हिन्दी से भिन्न प्रकृति रखने वाली बँगला मराठी, गुजराती आदि भाषाएँ जब हम सीखते हैं, तो हमारे सामने भी कठिनाई कुछ न कुछ आती ही है; पर उतनी नहीं, जितनी विदेशी (अरबी-फारसी या अंग्रेजी आदि) भाषाओं के सीखने में!

'का' का प्रयोग स्त्री-पुंभेद से या एकवचन-बहुवचन-भेद से—'का-की' तथा 'का-के' के—भेद ग्रहण करता है। 'आ' को 'ए' और 'ई' हो जाता है। यह बतलाया गया है। परन्तु कहीं ऐसा भी प्रयोग है, जब 'आ' को सदा 'ए' होता है—केवल 'के' का ही प्रयोग होता है; स्त्री-लिङ्ग सम्बन्धी होने पर भी और एकवचन में भी। जब स्वामित्व या अपने-पन का विधान करना होता है, तब सदा 'के' का प्रयोग होता है। जब ऐसा विधान न कर के कुछ और ही विधान होता है, तब 'का'-'की' और 'का'-'के' रूप होते ही हैं। देखिए—

१—राम के एक घोड़ा है और दो भैंसें 'हैं'

२—सीता के एक भैंस है, चार घोड़े हैं

३—उनके सब कुछ है, ईश्वर का दिया हुआ

४—दशरथ के चार लड़के थे, एक लड़की थी

५—कौशल्या के राम थे, केकयी के भरत

ऊपर सर्वत्र 'के' है। परन्तु—

१—राम की भैंस मैंने भी देखी है

२—कौशल्या का लड़का राम है

३—सीता के घोड़े चोर ले गया

४—हम लोगों का सहारा ईश्वर है

५—सब का काम है, अपना-अपना

इन उदाहरणों में 'का' के स्वरूप-भेद स्पष्ट हैं, क्यों कि स्वामित्व या अपनापन विधेय नहीं है। विधेय है—देखना, होना, चुरा ले जाना, सहारा होना तथा काम का होना। इसी लिए 'का' सर्वत्र सम्बन्धी के अनुसार स्त्री-लिङ्ग, पुल्लिङ्ग, एकवचन या बहुवचन है—का, के, की।

बस, इस के अतिरिक्त और कोई वैसी विशेष बात सामने नहीं है। सरलता के लिए, जहाँ सम्भव हुआ है, हिन्दी ने क्रिया में कृदन्त का और नाम में तद्धित का सहारा लिया है।

हिन्दी की संश्लिष्ट विभक्तियाँ

पीछे जिन विभक्तियों का उल्लेख हुआ है, वे सब 'विश्लिष्ट' हैं, प्रकृति से पृथक् अपनी स्पष्ट सत्ता रखती हैं और उस से सट कर नहीं, हट कर रहती हैं। कोई-कोई लेखक इन विभक्तियों का संश्लिष्ट प्रयोग भी करते हैं; जैसे—'राम को मैं जानता हूं।' परन्तु तो भी 'को' की पृथक् सत्ता स्पष्ट है। यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि यद्यपि विभक्तियाँ प्रकृति से सटा कर लिखने के विरुद्ध हम नहीं हैं; पर इतना कह देना चाहते हैं कि सटा कर लिखने की अपेक्षा हटा कर लिखने में अधिक सुविधा है और ऐसे स्थल आ जाते हैं, जब हटा कर ही विभक्ति लिखनी पड़ती है; जैसे—"एक 'एम० एल० ए०' ने तो भ्रष्टाचार की हद ही कर दी!" और—"उस 'एम० ए०' को या 'साहित्यरत्न' को ले कर हम क्या करें, जिसे यह भी नहीं मालूम कि शुद्ध शब्द 'छः' है, या 'छह'!" 'एम० ए० को' मिला कर न लिखा जायगा। तो, अलग लिखे बिना जब गति है ही नहीं, तब सर्वत्र उसी तरह क्यों न लिखा जाय?

खैर, कहने का तात्पर्य केवल यह कि 'ने' आदि विश्लिष्ट विभक्तियाँ हैं; यद्यपि कोई-कोई इन्हें प्रकृति से मिला कर भी लिखते हैं।

इन के अतिरिक्त हिन्दी की तीन-चार संश्लिष्ट विभक्तियाँ भी हैं, जिन की ओर सहसा ध्यान ही नहीं जाता! व्याकरणकारों ने भी ध्यान नहीं दिया है! इन का भी संक्षेप में परिचय लीजिए।

१—'एँ' विभक्ति

स्त्रीलिङ्ग संज्ञाओं में यह 'एँ' विभक्ति लगती है, जब बहुवचन प्रयोग होता है। 'एँ' परे हो, तो प्रकृति के अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है और व्यंजन आगे विभक्ति (एँ) से जा मिलता है; जैसे—

पुस्तक है—पुस्तकें हैं
दीवार गिरी—दीवारें गिरीं
दरार पड़ गयी—दरारें पड़ गयीं
भेड़ आ गयी—भेड़ें आ गयीं

यदि स्त्रीलिङ्ग संज्ञा के अन्त में 'आ' है, तो वह ज्यों का त्यों रहता है और 'एँ' विभक्ति उसी से सट कर जम जाती है—

माता बैठी है—माताएं बैठी हैं
लता खिली है—लताएं खिली हैं
कन्या पढ़ती है—कन्याएं पढ़ती हैं

स्त्रीलिङ्ग संज्ञा यदि ऊकारान्त है, तो उसके 'ऊ' को 'उ' हो जाता है—

बहू बैठी है—बहुएँ बैठी हैं

झाड़ू रखी थी—झाड़ुएँ रखी थीं

यदि स्त्रीलिङ्ग संज्ञा उकारान्त है, तब उस में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसी तरह—

गौ चर रही है, गौएँ चर रही हैं

इत्यादि समझिए।

परन्तु संज्ञा यदि इकारान्त या ईकरान्त है, तो फिर 'एँ' को 'आँ' हो जाता है और प्रकृति के 'इ' को 'इय्' हो जाता है। तब 'इय्' का 'य्' आगे 'आँ' से जा मिलता है—

बुद्धि, बुद्धियाँ

अञ्जलि, अञ्जलियाँ

निधि, निधियाँ

'अञ्जलि' तथा 'निधि' हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग हैं।

ईकरान्त के उदाहरण—

नदी बह रही है, नदियाँ बह रही हैं

बही रखी है, बहियाँ रखी हैं

धोती अच्छी है, धोतियाँ अच्छी हैं

नदी, बही तथा धोती के बहुवचन नदियाँ, बहियाँ औ धोतियाँ रूप हैं।

ध्यान रखना चाहिए कि यह 'एँ'-'आँ' हिन्दी की प्रथम विभक्ति ही है, जो बहुवचन में, केवल स्त्रीलिङ्ग में ही लगती है पुल्लिङ्ग के लिए हिन्दी में पृथक् विभक्ति है और उस का बहुवच भी भिन्न रीति से बनाया जाता है, जो आगे स्पष्ट होगा। स्त्री लिंग में मधुर सानुनासिक 'आँ' है ; पुल्लिङ्ग में 'आ'। 'अ बहुवचन में और 'आ' एक-वचन में।

२—'आ'

हिन्दी की यह 'आ' विभक्ति भी संस्कृत की प्रथमा विभ की ही तरह है ; प्रत्युत संस्कृत की प्रथमा के एक-वचन में ः विसर्ग आप देखते हैं, वही 'आ' के रूप में स्थित है। संस्कृत पुल्लिङ्ग में ही विसर्ग देखे जाते हैं—'रामः' आदि। स्त्री-लि में (रमा, नदी, आदि) तथा नपुंसक लिङ्ग में (फलम्, जल आदि) भिन्न रूप होते हैं। इसीलिए विसर्ग-विकास ('आ' का प्रयोग भी हिन्दी में पुंल्लिङ्ग में ही होता है ; प्रत्युत य पुंव्यजक एक विशिष्ट प्रत्यय के रूप में आज स्थित है घड़ा, लड़का, घोंघा, चना आदि शब्द पुल्लिङ्ग हैं। इन सब में य पुंव्यजक प्रत्यय 'आ' स्थित है। इसे स्पष्ट करना होगा।

संस्कृत 'घट' का विकास 'घड़' रूप से हुआ, जैसे 'वट' का 'बड़'। फिर 'घड़' के आगे हिन्दी ने अपनी पुंव्यजक विभक्ति लगा कर 'घड़ा' बना लिया। 'बड़' से 'बड़' हो कर फिर 'बड़ा' न हुआ; वही 'बड़' रहा, या 'बड़गद' हुआ। इस का कारण यह कि 'बड़ा' शब्द हिन्दी में एक अन्यार्थक पहले से ही विद्यमान था; इसलिए ठीक उसी तरह का दूसरा शब्द बना कर हिन्दी ने भाषा-भ्रम बढ़ाना ठीक न समझा। यह 'आ' पुंव्यंजक विभक्ति हिन्दी में कहां-कहां लगती है, यह आगे बताएंगे; पहले इस की उत्पत्ति देख लीजिए।

संस्कृत के 'बालकः' आदि में जो विसर्ग हैं, उनका उच्चारण ह् से मिलता-जुलता है और 'ह्' का तथा 'अ' का एक ही स्थान है—कण्ठ। सम-स्थानीय वर्ण प्रायः एक दूसरे का स्थान लिया करते हैं। 'उषः' का होते-होते 'उषा' रूप हो गया, किसी समय। विसर्गों ने 'अ' का रूप लिया, और तब सवर्ण-दीर्घ एकादेश होकर 'उषा'। बोलते-बोलते ऐसा हो गया। फारसी का 'ज्यादह' हिन्दी में 'ज्यादा' हो गया है! इसी तरह 'बालकः' का 'बालका' हो गया। हिन्दी ने यहां 'बालका' से 'आ' अलग कर लिया, और अपने ठेठ शब्दों में उसे लगाया—घड़ा, डंडा, आदि। ठेठ शब्द का मतलब यह कि हिन्दी के 'अपने' शब्द या जिन संस्कृत शब्दों को हिन्दी ने गोल-मटोल कर के एक विशेष प्रकार का बना लिया है—घट से घड़ा,

दण्ड से डंडा। यह आश्चर्य की बात है कि संस्कृत शब्दों से संस्कृत की चीज (विसर्गों) को हिन्दी ने एक पृथक् रूप दिया ; पर व्यवहार उस का पुल्लिग में ही करती है। किन्तु संस्कृत या अन्य किसी भाषा से आये तत्सम शब्दों में यह 'आ' प्रयुक्त हुआ नहीं देखा जाता है। बालक, पाठक तथा कोट, बटन और रूमाल, कागज आदि शब्द ऐसे ही रहते हैं ; इन में 'आ' नहीं लगता। बहुत से संस्कृत से आये हुए तद्भव शब्दों में भी 'आ' नहीं लगता ; यह अलग बात है ; जैसे 'घर' 'बाँस' 'सींग' आदि। परन्तु यह पक्की बात है कि लगे गा 'आ', तो वैसे तद्भव शब्दों में ही और पुल्लिंग में ही। स्त्रीलिंग से पुल्लिंग बनाने में भी यह लगता है—'धोता' 'पोथा' आदि। 'घर' आदि का विकास 'खड़ी बोली' के क्षेत्र में शायद हुआ ही न हो ; अन्यत्र हुआ हो !

'पठ्' आदि का रूप-विकास 'पढ़' आदि से हुआ—'पढ़ता' है ! 'पठन' का 'न' हिन्दी ने ले लिया और इस भाववचन (न) प्रत्यय में अपनी पुंव्यंजक विभक्ति लगा कर पढ़ना, लिखना, गाना, बजाना आदि भाववाचक संज्ञाएँ बना लीं, सब पुल्लिंग। संस्कृत में 'सामान्ये नपुंसकम्' होता है—पठनम्, वादनम्, गमनम् आदि। हिन्दी में नपुंसक लिंग है ही नहीं ; अतः 'सामान्ये' पुल्लिंग होता है—'पढ़ना-लिखना' आदि।

'त' प्रत्यय हिन्दी ने संस्कृत से लिया—'सुप्तोऽस्ति' आदि से

अलग कर के। सुप्तोऽस्ति—सोया है। यह भी सम्भावित है कि शतृ-प्रत्ययान्त 'गच्छत्' आदि से 'त्' अलग कर के उसे अपनी पद्धति पर सस्वर कर लिया हो हिन्दी ने। पर ये सब तो अलग विषय की बातें हैं। थोड़ा अर्थ-विकास कर के 'सोता है' बना लिया हिन्दी ने। 'त' के आगे सर्वत्र पुल्लिङ्ग क्रिया में 'आ'—सोता, पढ़ता, गाता, बजाता है। जैसे 'लड़का' में 'आ' पुंव्यंजक है, उसी तरह 'सोता' आदि में और 'सोया' आदि में भी। स्त्रीलिंग में 'लड़की पढ़ती (है)' 'लड़की सोयी (है)' और पुल्लिंग बहुवचन में 'लड़के' की ही तरह 'पढ़ते' हैं। इस का मतलब यही हुआ कि पुल्लिंग 'आ' विभक्ति जिस संज्ञा, विशेषण या क्रिया के अन्त में हो, उसे यदि स्त्रीलिङ्ग बनाना हो, तो उस (आ) को 'ई' हो जाता है। 'मिष्ट' से 'मीठ' बना और पुंव्यंजक विभक्ति (आ) लगा कर मीठा भात—'मीठी खीर'। क्षार से 'खार' और फिर 'खारा पानी'—'खारी मिट्टी'।

इस तरह यह 'आ' एक तरह की संश्लिष्ट विभक्ति है, जो पुल्लिंग शब्दों में लगती-लगती पुंव्यंजक प्रत्यय-मात्र रह गयी है ; सो भी अलक्ष्य।

३—'हिं'—'इ'

ब्रजभाषा में तथा अवधी में 'हिं' विभक्ति चलती है ;

लगभग वहीं, जहां राष्ट्रभाषा की 'को' विभक्ति—'रामहिं कह्यो बुझाइ'—राम को समझा कर कहा। यह 'हिं' राष्ट्रभाषा के कुछ सर्वनामों में 'को' की जगह विकल्प से लगती है—

तुम को मैं पुस्तकें दूँगा

तुम्हें मैं पुस्तकें दूँगा

दोनो तरह के प्रयोग चालू हैं। 'तुम' के आगे 'हिं' आने पर 'म' का 'अ' अलग हो गया और अन्यत्र जा बैठा। स्थिति यों हुई—'तुम् ह् अ इं' अर्थात् 'हिं' के बीच में 'अ' आ घुसा। भाषा के विकास में ऐसे वर्ण-व्यत्यय होते ही रहते हैं। 'अ-इं' मिलकर 'एं' हुआ। दीर्घ स्वर पर अनुस्वार अपना उच्चारण कुछ भिन्न रूप कर लेता है—अनुनासिक बन जाता है। इसी लिए 'एँ' भी लिखते हैं। 'तुम् ह्' के दोनो व्यंजन 'एं' में आ मिले—'तुम्हें' निष्पन्न। व्रजभाषा तथा अवधी में 'हिं' ज्यों की त्यों रहती है—'तुमहिं'।

'म' मधुर अक्षर है, जहाँ हिन्दी ने कर्ण-कटु 'हि' को खपा लिया—'तुम्हें'; परन्तु अन्यत्र उस का लोप हो जाता है। 'हम' में एक 'ह' पहले से ही है। दो हो जाते, तो कर्णकटुता और बढ़ जाती। इस लिए, हिन्दी ने 'हिं' के ह् को उड़ा दिया-'इं' रहा। 'हम-इं'। गुण – एकादेश होकर 'हमें' बना।

'यह' 'वह' को 'इस-उस' हो जाता है, यदि इन से परे कोई प्रत्यय-विभक्ति हो। 'स' भी महाप्राण है और 'ह' के साथ

स्थान-परिवर्तन किया करता है। इस लिए हिन्दी ने इस के योग में भी 'ह्' को उड़ा दिया-'इसे-उसे'। एक वचन में अनुस्वार का लोप हो जाता है—तुझे-तुम्हें, मुझे–हमें, उसे-उन्हें, इसे-इन्हें, किसे-किन्हें। हिन्दी अनुस्वार दे कर बहुवचन बनाती है—है-हैं, गयी-गयीं आदि। इसके विपरीत, एकवचन बनाने के लिए अनुस्वार का लोप। 'इसे—इस को' 'किसे-किस को' 'उसे-उस को' और 'उन्हें-उन को' 'इन्हें-इन को' आदि द्विविध प्रयोग गृहीत हैं। परन्तु 'को' तो अपनी खास चीज है ही। 'उस को' की अपेक्षा 'उसे' कहने में सौकर्य है; इस लिए इसे भी ग्रहण कर लिया गया, और सच पूछो तो अब ये ['हि' या 'इ' विभक्ति वाले] रूप ही अधिक चलते हैं।

'र' भी हिन्दी की एक संश्लिष्ट विभक्ति ही समझिए, जो मध्यम तथा उत्तम पुरुष सर्वनामों में सम्बन्ध प्रकट करने के लिए लगती है—

तेरा-मेरा, तुम्हारा,-हमारा, तेरी-मेरी। और सब जगह 'क' लगती है—'राम का' 'उस का' 'इस का' 'इस की' आदि। वस्तुतः 'र' तथा 'क' एक तरह से विभक्ति तथा तद्धित-पद्धति के सम्मिश्रण हैं, जो बाद में विभक्ति की तरह प्रयुक्त होने लगे।

संबोधन की 'ओ' विभक्ति

संबोधन (बहुवचन) में लगनेवाली 'ओ' विभक्ति भी

संश्लिष्ट ही है। इस की उपस्थिति में प्रकृतिगत वही सब परिवर्तन होते हैं, जो 'ओं' (ों) विकरण परे होने पर—

बालको, लड़कियो, बहुओ, धोबियो, बहनो ! और—

माताओ, छात्राओ, क्षत्रियाओ, आदि। संबोधन के एकवचन में यह विभक्ति नहीं लगती और प्रकृति ज्यों की त्यों रहती है; केवल 'आ'-विभक्त्यन्त पुल्लिंग संज्ञाएँ अपने अन्तिम 'आ' को 'ए' कर लेती हैं—

लड़के, इधर आ (इक्के वाले, इधर आ)।

परन्तु जातिवाचक संज्ञाओं के ही सम्बोधन इस तरह एकारान्त देखे हैं। व्यक्तिवाचक 'बुधुआ, माने गा नहीं'—लद्धा, तू चला जा ! इस तरह ज्यों के त्यों रहते हैं।

जातिवाचक संज्ञाएँ भी विशिष्ट एकत्व प्रकट करती हैं, तब एकारान्त नहीं होतीं—

'बाबा, मैं चलूँगा' बेटा, पढ़ने जरूर जाना' 'दादा, मुझे भी लड्डू लाना' 'मामा, रोटी खा लो' यहाँ एकवचनत्व ही प्रकट करने में शोभा तथा आत्मीयता है; अतः जातिवाचक की तरह नहीं, व्यक्तिवाचक की तरह संबोधन के रूप हैं।

सारांश यह कि आत्मीयता—श्रद्धा या वात्सल्य—प्रकट करना हो, तो आकारान्त पुल्लिङ्ग का भी एकवचन सम्बोधन ज्यों का त्यों रहता है, उसके 'आ' को 'ए' नहीं होता है। अन्यथा, साधारण दशा में 'टाँगे वाले' आदि एकारान्त रूप

होते हैं। अन्य सब संज्ञाएं (संबोधन के) एकवचन में ज्यों की त्यों रहती हैं—

१—राम, सुनो मेरी बात

२—कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ !

३—प्रभु, मेरे औगुन चित न धरो

४—हे युग के राजर्षि, राष्ट्रभाषा-उद्धारक !

५—ओ धोबी, गड़बड़ मत कर

६—अरे झंडू, तुम ने तो कुछ नहीं किया

स्त्रीलिङ्ग में—

१—देखो सरला, घर का काम करना

२—मालती, तू पढ़ने क्यों नहीं गयी ?

३—अरी बहू, तू उदास क्यों रहती है ?

४—गौ, तू सचमुच संसार की माता है

कभी-कभी (कविता आदि में) 'सरले' आदि संबोधन होते हैं।

सो, संबोधन के बारे में बहुत सीधा मार्ग है। एकवचन में प्रायः ज्यों के त्यों रूप और बहुवचन में प्रायः 'ओ' विभक्ति। संस्कृत के तत्सम 'विद्वान्' आदि शब्द भी सम्बोधन के बहुवचन में 'ओ' विभक्ति के साथ रहते हैं—

'अरे संसार के विद्वानो, क्यों बुद्धि का दुरुपयोग कर रहे हो ?'

हिन्दी में शब्दों की 'व्यक्ति'

'साहित्यदर्पण' में श्री विश्वनाथ ने लिखा है—'व्यक्तिः स्त्रीपुन्नपुंसकादिः—' शब्दों के स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग आदि भेदों को 'व्यक्ति' कहते हैं। यह 'व्यक्ति' शब्द इस अर्थ में हमें भी अच्छा लगता है। व्यक्ति, चिह्न, लिङ्ग ये शब्द समानार्थक हैं। 'पुरुषः' शब्द की तरह जिन की आकृति-व्यक्ति है, वे सब शब्द ('पर्वतः' 'योगः' आदि) पुल्लिङ्ग, संस्कृत में। 'स्त्री' की तरह जिन की आकृति-व्यक्ति है, वे सब स्त्री-लिङ्ग नदी, वाहिनी, उद्धरणी आदि। 'रमा' भी स्त्री है ; अतः, सुषमा, धारणा, पारणा आदि सब प्रायः स्त्रीलिङ्ग। कुछ—'फलम्' 'जलम्' आदि—ऐसे शब्द भी हैं, जो न स्त्रीलिङ्ग, न पुलिङ्ग। उन्हें 'नपुंसक लिङ्ग' कहा गया।

हिन्दी ने नपुंसक लिंग का बखेड़ा रखा नहीं ; क्योंकि यहाँ 'जलम्-फलम्' आदि 'जल-फल' बन कर आते हैं, नपुंसकत्व (म्) छोड़ कर। इसलिए, हिन्दी में शब्द या तो पुल्लिंग हैं, या स्त्रीलिङ्ग।

जो शब्द संस्कृत से पुल्लिङ्ग आये हैं—राजा, पिता, भ्राता,

बन्धु आदि—वे सब यहाँ भी पुलिंग ही हैं। संस्कृत के नपुंसक जलम् आदि भी—यहाँ पुलिंग हो जाते हैं—जल, फल, वन, धन, कमल आदि। 'जल मोठा है' 'फल अच्छा है।' 'मिष्ट' से 'मीठ' बना कर हिन्दी ने 'मीठा' कर लिया; पर 'जल' को 'जला' बना देना उसने ठीक न समझा। दूसरे की चीज जैसी की तैसी रख कर ही काम में लाना ठीक।

संस्कृत में 'आ' लगा कर प्रायः स्त्रीलिंग बनाते हैं—मधुर-मधुरा (वाणी), विधुर-विधुरा, इत्यादि। हिन्दी ने अपने यहाँ पुंव्यंजक विभक्ति के रूप में 'आ' को अपनाया है, तब स्त्रीलिंग बनाने के लिए उसका प्रयोग यहाँ कैसे हो सकता है? सो 'आ'-प्रत्ययान्त (पुलिंग) शब्दों को ईकारान्त कर के स्त्रीलिंग बनाया जाता है। 'स्त्री' की तरह—लड़का-लड़की, मीठा-मीठी, बड़ा-बड़ी, खट्टा-खट्टी, आदि। अर्थात् संज्ञा या विशेषण यदि 'आकारान्त' पुलिंग हैं, तो उन्हें ईकारान्त कर के स्त्रीलिंग बना लिया जाता है। वस्तुतः 'आ' प्रत्यय में पुंस्त्व है—घड़ा, घोड़ा, पोथा आदि। 'ई' में स्त्री-सुलभ मधुरता और लोच है।

जो तत्सम आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द संस्कृत के हिन्दी में आये हैं या आते हैं, वे ठीक उसी तरह (स्त्रीलिंग में) प्रयुक्त होते हैं—

१—लता लहलहा रही है

२—विद्या अच्छी चीज है

३—नासिका हमारी बड़ा काम देती है

जब 'नासिका' का तद्भव रूप 'नाक' काम में लाते हैं, तो यह भी स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है—'नाक छिद गयी'। यहाँ वह 'आ' उड़ जाता है—'नासिका' का 'नाका' नहीं बनता। कारण, हिन्दी तो तद्भव शब्दों को पुल्लिग बनाने के लिए 'आ' काम में लाती है न! इसीलिए, अपनी चीज से स्त्रीत्व-व्यंजक 'आ' हिन्दी प्रायः उड़ा देती है—

लाक्षा-लाख, भिक्षा-भीख

खट्वा-खाट, दूर्वा-दूब

शिला-सिल, सन्ध्या-साँझ

जिह्वा-जीभ, बन्ध्या-बाँझ

लाला-लार, दंष्ट्रा-डाढ़

कहीं-कहीं समास आदि में विशेष रूप से ह्रस्व-विधान है—

'घुड़साल

'शाला' का 'साल' है ; परन्तु 'अश्वशाला' को कभी भी 'अश्वशाल' या 'अस्वसाल' आदि न होगा। 'बाजिसाल' भी नहीं। अपना 'घोड़ा' लिया, जो संस्कृत के 'घोट' (क) शब्द

के 'ट' को 'ड' कर के है, अन्त में पुंव्यंजक विभक्ति लगा कर— इस 'घोड़ा' शब्द के साथ 'शाला' को हिन्दी का ठेठ रूप 'साल' बनाना पड़ा—'घुड़साल'। समास तथा तद्धित आदि में स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाते है, हिन्दी में। 'घोड़ा' का 'घुड़' हो गया।

सारांश यह कि आकारान्त स्त्रीलिंग संस्कृत शब्द यदि तत्सम हों, तब तो कोई बात नहीं; पर यदि उन्हों ने तद्भव रूप ग्रहण किया, तो ह्रस्व हो जाते हैं। ह्रस्व इस लिए कि पुलिंग न जान पड़े।

परन्तु ईकारान्त संस्कृत शब्द हिन्दी में सदा ईकारान्त ही रहते हैं। नदी, पृथ्वी आदि ज्यों के त्यों स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। तद्भव रूप ग्रहण करने पर भी अन्त में ई' लगी ही रहती है। कारण, इस 'ई' से कहीं किसी भ्रम की गुंजाइश वैसी नहीं। हिन्दी स्वयं भी 'ई' लगा कर स्त्रीलिंग बनाती है— लड़का-लड़की, मीठा-मीठी आदि। इसी लिए—

घटो (यन्त्र) का 'घड़ी' और मृत्ति का 'मिट्टी'

संस्कृत मूल शब्द 'मृत्ती' है, जिस से 'मृत्तिका' बना है; जैसे 'शाटी' से 'शाटिका' आदि। उसी 'मृत्ती' से 'मिट्टी' बना; 'ई' को छोड़ा नहीं। 'मृत्ती' शब्द का प्रयोग लुप्त हो गया; 'मृत्तिका' या 'मृद्' रह गये। परन्तु हिन्दी ने उस की

स्मृति सुरक्षित रखी है। जो कुछ ऊपर कहा गया, उसे स्पष्ट शब्दों में समझिए।

पुल्लिङ्ग शब्द

संस्कृत के अकारन्त तत्सम शब्द हिन्दी में पुल्लिंग चलते हैं; बालक, हर, शङ्कर, रुद्र, संयोग, वियोग, योग, संस्कार आदि।

संस्कृत में जो अकारान्त शब्द नपुंसक लिंग हैं, वे भी हिन्दी में प्रायः पुल्लिंग ही चलते हैं; धन, वन, पुष्प, जल, कुसुम, शरीर, लोम (या रोम), कारण, निधन, गमन, दर्शन, अनुधावन आदि।

प्रायः इस लिए कि 'पुस्तक' जैसा कोई शब्द दूसरी ओर जाता हुआ देखा जाता है—'पुस्तक अच्छी है'। यह 'किताब' के साथ रहने का प्रभाव है। 'किताब' उर्दू में स्त्री-लिंग है, हिन्दी में भी। उसी के संग-साथ से पुस्तक भी स्त्री-लिंग में समझिए। परन्तु 'ग्रन्थ' और 'प्रबन्ध' आदि पुलिङ्ग ही हैं। केवल नपुंसक (पुस्तक) को 'किताब' (स्त्रीलिंग) ने अपनी ओर कर लिया है! जनखे लोग प्रायः मर्दाने डिब्बे में ही बैठते हैं; क्यों कि उनके लिए रेल में कोई पृथक् प्रबन्ध है नहीं! परन्तु कभी किसी जनखे को कोई उस की चिर-परिचित स्त्री यदि अपने साथ जनाने डिब्बे में बैठा ले; तो कोई असम्भव बात न समझनी चाहिए।

संस्कृत के वारि, दधि आदि इकारान्त शब्द भी हिन्दी में

प्राय: पुल्लिंग ही चलते हैं। 'प्राय:' इस लिए कि 'अस्थि' प्राय: स्त्रीलिंग में ही चलता है—'अस्थि टूट गयी'। यह 'हड्डी' के कारण समझिए।

संस्कृत के उकारान्त नपुंसक लिंग शब्द 'मधु' आदि भी हिन्दी में पुल्लिंग ही चलते हैं - 'मधु अच्छा है'।

जो उकारान्त शब्द संस्कृत में पुल्लिंग हैं, वे तो प्राय: यहाँ पुल्लिंग हैं ही—भानु, कृशानु, विधु आदि।

संकृत के इकारान्त पुल्लिंग शब्द, जो स्पष्टत: पुंस्त्व से सम्बन्ध रखते हैं, यहाँ भी पुल्लिंग हैं—हरि, कपि, विधि (ब्रह्मा), कवि आदि। 'रवि' भी पुल्लिंग है। 'कमलिनी' आदि के वर्णन से पुंस्त्व का अध्यवसान समझिए। परन्तु निधि, विधि (प्रकार), अञ्जलि आदि शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग हैं, जिन का पुंस्त्व वैसा आभासित नहीं। यह प्रभाव है—गति, मति, बुद्धि आदि इकारान्त शब्दों का, जो संस्कृत में स्त्रीलिंग हैं और हिन्दी में भी। आकारान्त संस्कृत तत्सम पुल्लिंग 'राजा' आदि यहाँ भी पुल्लिंग ही हैं।

अपने 'आ'-प्रत्ययान्त शब्द हिन्दी में सब-के-सब पुल्लिंग हैं—

संज्ञा—लड़का, गड्ढा, गाड़ा, भाड़ा, नाला आदि ।

विशेषण—अच्छा, बुरा, भला, माड़ा, गन्दा, मीठा, खट्टा, छोटा, मोटा, नीला, पीला, काला, सड़ा आदि ।

भाववाचक (कृदन्त) संज्ञा—पढ़ना, लिखना, उठना, बैठना, झगड़ना, निपटना, देखना, सुनना आदि ।

कृदन्त विशेषण--'घटिया', 'बढ़िया' आदि के अन्त में पुंव्यंजक 'आ' न समझ लीजिए गा ! ऐसे शब्दों में स्वतन्त्र कृदन्त 'इया' प्रत्यय (धातुओं से) है । 'जड़िया' आदि इसी प्रत्यय के रूप हैं । 'इया' प्रत्यय से बनाये शब्द विशेषण या जातिवाचक संज्ञा के रूप में चलते हैं और सर्वत्र (स्त्रीलिंग-पुल्लिंग या एकवचन और बहुवचन में) समान रहते हैं—

घटिया कपड़ा, घटिया धोती ।

घटिया कपड़े, घटिया धोतियाँ ।

बढ़िया धोती, बढ़िया कोट ।

बढ़िया धोतियाँ, बढ़िया जूते ।

इस तरह हिन्दी में पुल्लिग शब्दों की चर्चा हुई ।

स्त्रीलिंग शब्द

संस्कृत के आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द 'लता' आदि ज्यों के त्यों हिन्दी में भी स्त्रीलिंग ही रहते हैं ।

यदि वैसे (स्त्रीलिंग आकारान्त) शब्द में हिन्दी ने कुछ परिवर्तन कर के उसे तद्भव बना लिया है, तो फिर उस के अन्त का 'आ' ह्रस्व हो जाय गा ; 'दूर्वा' का 'दूब' ; 'दूबा' नहीं। इस तद्भव-भेद का कारण वही है, जो पीछे बतला आये हैं कि हिन्दी ने संस्कृत पुल्लिग का प्रमुख चिह्न (प्रथमा-एकवचन में अकारान्त शब्द के विसर्ग) ले कर 'आ' बना लिया है और अपने निजी शब्दों में तथा सर्वथा अपनापन जिन्हें दे दिया है, उन (संस्कृतोद्भूत) तद्भव शब्दों में उस का प्रयोग करती है। हिन्दी ने 'आ' को पुंस्त्व-व्यंजक विभक्ति बना लिया है ; इसी लिए स्त्रीलिंग—धोती-पोथी आदि—शब्दों को भी (वृहत् अर्थ में) पुल्लिग इसी ('आ') से बना लेते हैं—'धोता'-'पोथा'। संस्कृत में 'आ' स्त्री-व्यंजक प्रत्यय है और 'रमा' की तरह सरला, निर्मला, सुजला, सुशीला आदि बन जाते हैं ; स्त्रीलिंग शब्द। 'सरल' से 'सरला'। हिन्दी में 'पोथी' से 'पोथा'। जब तद्भव शब्दों में हिन्दी पुंव्यंजना के लिए 'आ' लगाती है, तो स्त्रीलिंग तद्भव शब्दों में तद्रूप ('आ') को कैसे रख सकती है ?

संस्कृत के ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—लक्ष्मी, सरस्वती, नदी आदि—यहाँ भी स्त्रीलिंग हैं, यह कह आये हैं। ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द 'वधू' आदि भी यहाँ स्त्रीलिंग ही हैं और उन के तद्भव रूप 'बहू' आदि भी स्त्रीलिंग ही। 'बहू' तद्भव के 'ऊ' को

हिन्दी ने ह्रस्व नहीं किया ; क्योंकि यहाँ 'ऊ' कोई पुंव्यंजक विभक्ति तो है ही नहीं कि भ्रम को अवकाश हो।

संस्कृत के व्यंजनान्त स्त्रीलिंग शब्द 'परिषद्' आदि हिन्दी में भी स्त्रीलिंग ही चलते हैं।

पुल्लिंग से स्त्रीलिंग

पुल्लिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने की विधि भी बहुत सरल है। संस्कृत तत्सम 'बालक' आदि के स्त्रीलिंग रूप (संस्कृत की ही तरह) 'बालिका' आदि होते हैं—ब्राह्मण-ब्राह्मणी, क्षत्रिय-क्षत्रिया, वैश्य-वैश्या आदि। तद्भव शब्दों में हिन्दी अपना स्वतन्त्र 'इन' प्रत्यय लगाती है—सुनार-सुनारिन, लुहार-लुहारिन, चमार-चमारिन, भंगी-भंगिन आदि। 'पण्डित' का स्त्रीलिंग संस्कृत की ही तरह 'पण्डिता' हिन्दी में भी हो गा ; यदि स्त्री में अपना पाण्डित्य है।—'पण्डिता रमाबाई'। यदि ऐसा नहीं है, पुंयोग से ही स्त्रीत्व प्रकट करना है, तो फिर 'पण्डित' से 'आइन' प्रत्यय हो गा—'पण्डिताइन'। 'पण्डिता' और 'पण्डिताइन' को संस्कृत के 'आचार्य्या' तथा 'आचार्य्याणी' की तरह समझिए।

हिन्दी के तद्भव या निजी ('आ'-प्रत्यान्त) पुल्लिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाना हो, तो अन्त्य 'आ' को 'ई' कर दीजिए—लड़का-

लड़की, बुड्ढा-बुड्ढी, भला-भली, मीठा-मीठी, छोटा-छोटी, पढ़ा-लिखा—पढ़ी-लिखी, जगमगाता हुआ—जगमगाती हुई, लिखा हुआ—लिखी हुई आदि ।

पुल्लिंग (कृदन्त) क्रिया को भी इसी तरह, 'आ' को 'ई' कर के, स्त्रीलिंग बनाते हैं—

गया था, गयी थी ।

आया था, आयी थी ।

सोया (है), सोयी (है) आदि ।

'है' सहायक क्रिया तिङन्त है, जो पुल्लिंग-स्त्रीलिंग में समान रहती है ; यह आगे मालूम हो गा ।

जो तद्भव विशेषण 'आ' नहीं रखते, (जैसे 'ढीठ'), उन्हें ईकारान्त नहीं किया जाता है, उन का स्त्री-लिंग में भी वैसा ही प्रयोग होता है—

ढीठ लड़का—ढीठ लड़की

बहुवचन में भी परिवर्तन नहीं होता—

ढीठ लड़के—ढीठ लड़कियाँ

क्या कारण है कि 'मिष्ट' का तद्भव 'मीठा' हुआ ; पर 'धृष्ट' का 'ढीठ' ही रहा ? 'ढीठा' क्यों नहीं हुआ ?

इसका कारण यह है कि 'ढीठ' आदि शब्दों का विकास हिन्दी की उन (अवधी आदि) बोलियों में हुआ है, जहाँ पुं-व्यंजक 'आ' विभक्ति की वैसी कोई सत्ता नहीं। वहाँ क्रियाएँ भो 'आ' से रहित ही हैं। केवल भूतकाल आदि में कुछ झलक है—'गा', 'गवा', 'हुइ गा' आदि। सो, 'धृष्ट' आदि से 'ढीठ' आदि शब्द-विकास उन्हीं क्षेत्रों में हुआ ; 'खड़ी बोली' के क्षेत्र में नहीं, जहाँ खड़ी पाई (ा) की विशेषता है। जब 'खड़ी बोली' का प्रसार राष्ट्रभाषा के रूप में शुरू हुआ और यह अवध आदि प्रदेशों में पहुंची, तो अपने साहित्य में इसने वहाँ के 'ढीठ' आदि शब्द भी ले लिए ; और उन्हें ठीक उसी रूप में रखा। इस से पता चलता है कि किस शब्द का विकास किस प्रदेश में हुआ !

विशेषणों को पुल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बनाने की विधि ऊपर आ गयी। संस्कृत तत्सम विशेषणों को पुल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बनाने में संस्कृत का ही मार्ग हिन्दी ने लिया है। 'सुन्दर' का 'सुन्दरी' रूप हो गा। जब किसी विशेषण का जातिवाचक संज्ञा की तरह प्रयोग होता है, तो स्त्रीलिंग-पुल्लिंग भेद बराबर स्पष्ट रहता है। 'उस सुन्दरी ने पृथ्वीराज को ही वरण किया' 'उन सुन्दरियों ने मंगल गीत प्रारम्भ किये' आदि। परन्तु, जब विशेषण के रूप में ही इन का प्रयोग होता है, तो स्त्रीलिंग को 'पुंवद्भाव' हो जाता है—स्त्रीत्व-सूचक 'ई' आदि का तिरोभाव हो जाता है—

उन सुन्दर बालिकाओं ने गीत गाये
हरित लताओं में फूल खिल उठे
चञ्चल लहरें अठखेलियाँ कर रही थीं
मधुर ध्वनि सुनायी दी

यहाँ 'सुन्दर' 'हरित' 'चञ्चल' तथा 'मधुर' शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं; क्योंकि स्त्रीलिङ्ग उन के विशेष्य हैं। परन्तु स्त्रीव्यंजक कोई शब्दांश उन के साथ नहीं है। व्यर्थ समझ कर हिन्दी ने हटा दिया। विशेष्य से ही इन शब्दों को स्त्रीलिङ्ग समझा जा सकता है, बिना भ्रम के। तब सीधा मार्ग अच्छा! मात्रा-गौरव किस काम का? बहुवचन में भी हिन्दी ऐसे (तत्सम) विशेषण एक समान रखती है—

मधुर गायन हो रहा है—मधुर वचन मन मोहते हैं
पीत वस्त्र था मोहन का—पीत वस्त्र थे बौद्ध भिक्षु के

जब कि विशेष्य से ही बहुवचन स्पष्ट है, तब विशेषण में जरूरी नहीं।

आप कहें गे, तब 'आकारान्त' विशेषण में, स्त्रीलिङ्ग और बहुवचन में, क्यों परिवर्तन होता है?

मीठा फल, मीठे फल, मीठी खीर

यह क्यों? सुनिए। 'आ' हिन्दी का पुंव्यंजक प्रत्यय

है ; इस लिए 'मीठा खीर' कहना ठीक न हो गा। विशेषण-विशेष्य में समानता चाहिए। इस लिए 'मीठी खीर' होता है। 'मधुर' में यह बात नहीं। इस लिए उस का उभयत्र समान-रूप से प्रयोग है। 'अच्छा' में 'आ' है; जो बहुवचन में सदा 'ए' हो जाता है—

लड़का—लड़के, बड़ा—बड़े, गया—गये, आया—आये, था—थे, सोया—सोये, आता—आते, चलता—चलते आदि।

इस सामान्य प्रवाह को तोड़ना हिन्दी ने ठीक नहीं समझा ; इस लिए बहुवचन विशेष्य के साथ भी विशेषण अपना बहुवचन रूप रखता है—'आ' को 'ए' कर लेता है। स्पष्टता के लिए भी यह जरूरी है। 'तुम ने क्या खाया' ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाय—'मधुर फल', तो सुनने वाला समझ न सके गा कि एक फल खाया, या एक से अधिक बता रहा है ! परन्तु उत्तर हो—'मीठे फल' या 'मीठा फल' तो संख्या स्पष्ट हो जाय गी। 'अच्छा कल' और 'अच्छी कल' (मशीन) में कितनी स्पष्टता है ? 'सुन्दर कल' में यह स्पष्टता नहीं है। 'कल' की अस्पष्ट-लिङ्गता 'अच्छा' या 'अच्छी' से स्पष्ट हो जाती है।

अस्तु, हम कहना केवल इतना चाहते हैं कि संस्कृत या किसी बाहरी भाषा से आये हुए विशेषण प्रायः समान रूप स्त्री-पुलिङ्ग में यहाँ रखते हैं—

खूबसूरत मकबरा बनवाया
खूबसूरत दरगाह बनवायी

और—

बदसूरत औरत आती है
बदसूरत मर्द आता है

परन्तु 'विद्वान्' जैसे कुछ विशेषण हिन्दी में भिन्न रूप अवश्य ग्रहण करते हैं—

वे विद्वान् हमारे पूर्वज
वे हमारी विदुषी बहनें

'विद्वान् बहनें' अच्छा न लगेगा। हाँ, एकवचन और बहुवचन में अन्तर नहीं होता है—

विद्वान् लड़का–विद्वान् लड़के

इसी तरह 'बुद्धिमान्' आदि समझिए। हमारा मतलब संस्कृत के मतुप् प्रत्यय से है। इस प्रत्यय से बने शब्द स्त्रीलिङ्ग में अपना स्वरूप नहीं बदलते—'उस का विवाह एक गुणवती तथा शीलवती कन्या से हुआ'। 'गुणवान् कन्या' न हो गा।

हम ने ऊपर कहा है कि संस्कृत स्त्रीलिंग विशेषण—तत्सम विशेषण—हिन्दी में स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ 'पुंवद्भाव' ग्रहण

करते हैं—'सुन्दर माला'। परन्तु तद्धित इन्-प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग विशेषण का पुंवद्भाव प्रायः नहीं होता—

'मनोहारिणी वाणी' का

'मनोहारी वाणी'

अच्छा न लगे गा। 'मनोहर' चल जाय गा। अन्यथा 'वनवासिनी वृद्धा व्याकुल हो गयी' ऐसा ही हो गा, 'वनवासी वृद्धा' नहीं।

इस का कारण क्या है? क्यों अच्छा नहीं लगता? बात यह है कि 'इन्-अन्त' संस्कृत के अनन्त पुल्लिंग शब्द हिन्दी में चलते हैं—ज्ञानी, ध्यानी, दण्डी, अभिमानी आदि। 'हस्ती' के प्रति-रूप 'हाथी' आदि भी। सो, ऐसे शब्दों के कारण 'मनो·हारी लता' आदि में 'मनोहारी' जैसे शब्द आपाततः पुल्लिंग जान पड़ेंगे, जो स्त्रीलिंग विशेष्यों के साथ अच्छे नहीं लग सकते। इसी लिए 'इन्' प्रत्यय से बने विशेषणों का 'पुंवद्भाव' फबता नहीं है। परन्तु यदि कोई वैसा कहे या बोले, तो गलत न समझा जाय गा।

हाँ, यद्यपि 'अलंकृत भाषा' हमें अच्छी लगती है; न कि 'अलंकृता भाषा'; परन्तु कविता में, संस्कृत-मराठी आदि के अनुकरण पर हिन्दी ने वैसे प्रयोग स्वीकार कर लिये हैं :—

'सस्यश्यामला भूमि मनोहर, है सब का मन मोहती'

<u>संख्या-वाचक विशेषण</u> हिन्दी में उभयत्र समान रहते हैं। संस्कृत में एक, द्वि, त्रि, चतुर् इन चार शब्दों के स्त्री-पुं-नपुंसक लिङ्गों में रूप-भेद होते हैं और 'पञ्च' से फिर 'त्रिषु समाः' रहते हैं—

पञ्च फलानि, पञ्च पुरुषाः, पञ्च बालिकाः

परन्तु हिन्दी ने एक, दो, तीन, और चार को भी समान कर दिया है—कोई भेद नहीं। जब समता है, तो पूरी रहे, 'एक' से 'चार' तक विषमता क्यों रहे ?

एक बालक—एक बालिका

दो बालक—दो बालिकाएँ

तीन बालक—तीन बालिकाएँ

चार बालक—चार बालिकाएँ

इसी तरह पाँच, छह आदि, हजार, लाख, करोड़ तक समझिए ; इस से भी आगे।

परिमाण-वाचक विशेषण भी समान ही रहते हैं—

मन भर दूध—मन भर खीर

एक सेर पानी—एक सेर रबड़ी

इसी तरह 'नाप' के वाचक समान रहते हैं। यह भी परिमाण ही है—

दो हाथ कपड़ा—दो हाथ चादर

हाँ, लम्बा, चौड़ा आदि शब्दों में तो स्त्री-पुंभेद होगा ही—

दो हाथ लम्बा कुरता

दो हाथ लम्बी चादर

'लम्बा' में वही 'आ' है न! इस लिए स्त्रीलिंग में इसे 'ई' का रूप लेना ही होगा।

इस तरह संक्षेप में हिन्दी का यह लिङ्ग-विधान दिया गया। इस में कहाँ कौन सी कठिनाई है?

तृतीय अध्याय

सर्वनाम और विशेषण

पीछे 'व्यक्ति'-विवेचन में यत्र-तत्र विशेषण की चर्चा भी आ गयी है ; परन्तु यह एक अलग चीज है ; इस लिए इस अध्याय में सर्वनाम के साथ इस का उल्लेख भी होगा। सर्वनाम के साथ विशेषण को भी रख लेने का कारण है। एक संज्ञा का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा (सीधे या प्रतिनिधि के द्वारा) उस (संज्ञा) की विशेषता बतलाता है। दोनो का संबन्ध संज्ञा से है। इसी समान-सम्बन्ध के कारण इन दोनो को यहाँ एक कमरे में आवास दिया जा रहा है।

सर्वनाम

हिन्दी के अपने 'सवनाम' हैं। किसी भी भाषा में किसी दूसरी भाषा के शतशः, सहस्रशः और लक्षशः शब्द आ कर मिल सकते हैं; और उसे अभिभूत भी कर सकते हैं; पर वह (दबी हुई भाषा) तो भी अपने 'प्राण' नहीं छोड़ती; जीती रहती है! उस के 'प्राण' हैं उस के अपने क्रिया-पद और सर्वनाम। क्रिया-पद और सर्वनाम प्रत्येक भाषा में अपने रहते हैं। यही कारण है कि 'मैं ज्यादा तकल्लुफ़ करना हर्गिज पसन्द न करूँगा' यह हिन्दी-वाक्य अरबी-फारसी शब्दों से बेतरह लदा होने पर भी हिन्दी ही है; भले हो 'विकृत हिन्दी' कहें, जिस का नाम 'उर्दू' पड़ा। समय पाकर कोई भाषा अपनी विकृति दूर भी कर देती है। तुर्किस्तान का जब राष्ट्रीय जागरण हुआ, तो उस के महान् नेता कमाल पाशा ने अपनी (तुर्की) भाषा का शुद्धीकरण बड़े दबंगपन से किया। तुर्की भाषा से वे अरबी के शब्द बीन-बीन कर और ढूँढ़-ढूँढ़ कर अलग किये गये, जो विजेता अरबों के कारण इस में आ मिले थे। कमाल पाशा ने अपना नाम तक बदल लिया था—'कमाल पाशा' से वे 'कमाल अतातुर्क' हो गये थे; इस लिए कि 'पाशा' अरबी का शब्द है। तुर्किस्तान में कुरान तक को अरबी में पढ़ने-छापने की मनाही हो गयी! अरबी में 'बाँग' देने वाले मुल्लाओं को सजा मिलने लगी। तुर्की भाषा में बाँग दो, तुर्की में नमाज पढ़ो और तुर्की भाषा में रसूल

का उपदेश पढ़ो-सुनो। यदि तुर्की भाषा अपने क्रिया-पद तथा सर्वनाम भी खो देती, तो समाप्त थी! फिर तो तुर्किस्तान की भाषा अरबी ही होती। परन्तु ऐसा क्यों होता? भाषा तो साधारण जनता के सहारे जीती और जीतती है।

यह इतना प्रसंग-प्राप्त। यहाँ इतने से मतलब कि हिन्दी में सर्वनाम 'अपने' हैं—'पुरुष'-वाचक भी और 'प्रश्न' आदि के वाचक भी। ये सब सर्वनाम प्राकृत से बनते-बनाते आये हैं। इन की अपनी विशेषता भी है।

संस्कृत में केवल 'युष्मद्-अस्मद्' ही सब लिङ्गों में समान रूप रखते हैं। शेष सब सर्वनाम रूप बदलते हैं—

कस्याः अयम् बालकः?

कस्य इयम् बालिका?

और

किम्, कः, का। एतत्, एषः, एषा

परन्तु हिन्दी ने यह सब झंझट उड़ा दी है। सभी सर्वनाम सर्वत्र समान रूप रखते हैं। स्त्री-लिङ्ग- पुल्लिङ्ग में कोई भेद नहीं होता—

तू कहाँ जाय गी—तू कहाँ जाय गा?

तुम कहाँ जाओ गी—तुम कहाँ जाओ गे?

और—

मैं काशी जाऊँगा-मैं काशी जाऊँगी।

हम काशी जायँगे—हम काशी जायँगी।

इसी तरह—

१—कोई जा रहा है—कोई जा रही है

२—कौन जा रहा है?—कौन जा रही है?

३—यह पढ़ता है—यह पढ़ती है

४—वह पढ़ता है—वह पढ़ती है

जो सुगमता संस्कृत ने जरा से क्षेत्र में दी, वही हिन्दी ने सर्वत्र दे दी। संस्कृत में केवल—

त्वं गतः—त्वं गता

अहं गतोऽस्मि—अहं गता अस्मि

इस तरह केवल युष्मद्-अस्मद् में समानता रखी है, जो हिन्दी में भी है—

तू गया—तू गयी

मैं गया हूँ—मैं गयी हूँ

परन्तु यहाँ—

कोई गया—कोई गयी

आदि में भी एकरूपता है; जब कि संस्कृत में

कोऽपि गतः—काऽपि गता

यों भेद है। इसी तरह हिन्दी में—

यह गया—यह गयी

वह गया---वह गयी

ये गये—ये गयीं

वे गये—वे गयीं

सर्वत्र यह, वह, ये, वे, समान हैं; पर संस्कृत में--

सः गतः—सा गता

अयं गतः—इयं गता

ते गताः—ताः गताः

इमे गताः—इमाः गताः

यों प्रतिपद भेद है।

कहने का अभिप्राय यह कि हिन्दी में अपने 'सर्वनाम' हैं और उन के रूप स्त्रीलिंग-पुल्लिंग में समान ही रहते हैं। इस लिए, इस विषय को अधिक बढ़ाने की वैसी आवश्यकता नहीं।

विशेषण

विशेषणों की चर्चा में लगे हाथों पहले यह कह दिया जाय कि 'यह' और 'वह' सर्वनाम भी संज्ञा के साथ आ कर विशेषण का काम करते हैं। तब इन्हें 'संकेत वाचक' विशेषण कहते हैं। इसी तरह प्रश्नवाचक तथा अन्य भी सर्वनाम विशेषण बनते हैं। जब वे किसी संज्ञा के बदले आयें, किसी संज्ञा का

प्रतिनिधित्व करें, तब 'सर्वनाम', और जब किसी संज्ञा के आगे-पीछे लग कर उस की विशेषता प्रकट करें, तब विशेषण। काम-भेद से नाम-भेद। विशेषण-दशा में भी वे अपनी वह (एक-रूपता की) विशेषता नहीं छोड़ते—स्त्रीलिंग और पुलिंग में समान रूप ही रखते हैं—

वह लड़का कहाँ है—वह लड़की कहाँ है ?
यह लड़का बैठा है—यह लड़की बैठी है
वे बालक पढ़ते हैं—वे बालिकाएँ पढ़ती हैं
ये बालक चतुर हैं—ये बालिकाएँ चतुर हैं !

इसी तरह—

कौन लड़का—कौन लड़की
कोई लड़का—कोई लड़की

हिन्दी में विशेषण के साथ अलग विभक्ति लगाने का बखेड़ा भी नहीं है। विशेषण तो विशेष्य के रङ्ग में डूबा होता है; विशेष्य की विभक्तियाँ ही विशेषण की विभक्तियाँ हैं। तब फिर अलग (विशेषण में) विभक्तियाँ लगाने की झंझट क्या ! देखिए—

चतुर लड़के से प्रश्न पूछो
मूर्ख जनों को सचेत करो
सुशील कन्या ने सब काम किया

जब सर्वनाम विशेषण के रूप में आते हैं, तो वे भी इसी तरह निर्विभक्तिक रहते हैं।—ने, को, से, का, में, पर आदि विभक्तियाँ परे हों, तो यह, वह, जो, कौन, कोई आदि सर्वनाम रूप बदल कर इस, उस, जिस, किस, किसी यों स-युक्त अपना रूप कर लेते हैं;—पर 'तू' को 'तुझ' और 'मैं' को 'मुझ' आदेश होता है—

इस का घर—उस का पेड़

किस की स्त्री—किस का पति

इस में क्या—उस में यह । इसे, इस+इ=इसे

तुझे—तुझ से,—मुझे—मुझ को

सर्वनाम जब विशेषण बनते हैं, तब भी इसी तरह स-सहित रूप ग्रहण करते हैं—

इस लड़के का घर—इस लड़की का घर

किस स्त्री का वस्त्र—किस पुरुष का वस्त्र

किस लड़के ने देखा—किस लड़की ने देखा

इस घर में है—इस लता पर है

बहुवचन में 'स' के बदले 'न' आ जाता है और रूप इन, उन, जिन, आदि हो जाते हैं।—हिन्दी अनुनासिक से बहुवचन बनाती है और 'न' में वह है।

इन के बालक—उन की कन्याएँ

विशेषण-दशा में भी इसी तरह—

इन लड़कों को समझा दो—इन छात्राओं से कहो।

किन छात्रों से—किन माताओं से

जिन लोगों ने—जिन कन्याओं ने

बहुवचन में 'तू' को 'तुम' तथा 'मैं' को 'हम' होता है। 'म' भी सानुनासिक है—

तुम्हें—तुम को, हमें—हम को, हमारा आदि।

सो, सर्वनाम और विशेषण हिन्दी में अत्यन्त सरल मार्ग रखते हैं।

'आ' की विशेषता

पहले कहा जा चुका है कि 'आ' हिन्दी की पुं-विभक्ति है, जिस का प्रयोग एक अलक्षित प्रत्यय के रूप में होता है। अर्थात् ने, को, से, में आदि की तरह इस 'आ' का प्रयोग कोई अभीष्ट अर्थ-विशेष प्रकट करने में नहीं होता है और यही कारण है कि उन विशिष्ट विभक्तियों की उपस्थिति में भी यह अपनी सत्ता जैसी की तैसी बनाये रखने में समर्थ है; जैसे संस्कृत में स्त्रीप्रत्यय 'आ'। कोई भी शब्द (प्रत्यय, विभक्ति या विशेष्य)

सामने आ जाय, तो भी यह सिर ऊँचा किये खड़ा रहता है। पर ऐसी दशा में 'आ' को 'ए' हो जाता है—

लड़के से—लड़के ने—लड़के पर

बहुवचन में अपनी सत्ता 'ओं' विकरण को सौंप देता है—

लड़कों से—लड़कों ने—लड़कों पर

यही बात विशेषणों में भी है—

अच्छे लड़के ने—अच्छे लड़के से

विशेष्य के आगे कोई विभक्ति (ने आदि) न हो, तब विशेषण के 'आ' को 'ए' नहीं होता—'अच्छा लड़का पढ़ता है'।

धातुज (कृदन्त) विशेषणों में भी यही नियम है—

पढ़ते हुए लड़के से—लिखते हुए छात्र से

'पढ़ता' का 'पढ़ते' और 'हुआ' का 'हुए' हो गया है। ये दोनो कृदन्त विशेषण हैं—संस्कृत में 'पठन्तं बालकं' 'लिखन्तं बालकम्' होंगे, कर्म-कारक में। भूतकालिक विशेषण भी इसी तरह—

मैंने अपने पढ़े हुए ग्रन्थ राम को दे दिये

(मया स्वे पठिताः ग्रन्थाः रामाय दत्ताः)

शहर से आये हुए लड़के ने कहा

(नगरात् आगतेन बालकेन कथितम्)

'पढ़ा हुआ' का 'पढ़े हुए' हो गया है ; क्योंकि विभक्ति-सहित विशेष्य सामने है। यदि वैसा विशेष्य सामने न हो, कोई सीधे विभक्ति ही हो, तो भी 'आ' को 'ए' हो जायगा स्त्री-लिंग में 'आ' को 'ई' रूप मिल ही जाता है—

आई हुई लड़की ने कहा

वर्तमानकालिक 'त'-प्रत्यान्त विशेषण—

आती हुई लड़की ने कहा

संस्कृत में—

आगता बालिका अकथयत्

आगच्छन्ती बालिका अकथयत्

परन्तु बहुवचन में स्त्रीलिंग विशेषण भी अपना बहुवचनत्व पृथक् नहीं प्रकट करता, विशेष्य के द्वारा ही वह काम करता है—

आई हुई लड़कियों ने कहा

बीती बातें भूल जाओ

'आयी हुई' और 'बीती' साधारण स्थिति में हैं। अपने ऊपर अनुस्वार अलग लगाने का बखेड़ा नहीं। यदि वैसा कहीं होता, तो वाक्य कितना मिनमिना हो जाता—

'आयीं' हुईं लड़कियों ने कहा

कितना भद्दा लगता है? परन्तु 'अच्छे लड़के' में 'अच्छा' को 'अच्छे' हो जाना बुरा नहीं लगता। प्रत्युत वैसा न होना बुरा लगता। 'अच्छा लड़के' ऐसा लगता है, जैसे ऊँट के साथ बैल एक हल में जोत दिया गया हो! 'अच्छे लड़के' जैसे दो बराबर के सिपाही कदम से कदम मिलाये जा रहे हों।

बस, मेरी समझ में और कोई विशेष बात है नहीं।

चतुर्थ अध्याय

अव्यय

हिन्दी में कुछ तो अपने अव्यय हैं और कुछ संस्कृत से भी लिये हुए (तत्सम या तद्भव) चलते हैं। परन्तु जिस अर्थ को देनेवाला अव्यय हिन्दी में अपना है, उस अर्थ को प्रकट करने के लिए किसी अन्य भाषा का कोई अव्यय प्राय: नहीं लिया जाता है। हिन्दी में जब-तब, इधर-उधर, जहाँ–वहाँ, आदि अपने अव्यय हैं। इन की जगह संस्कृत के यदा–तदा, इतः-ततः यत्र-तत्र आदि साधारणत: नहीं दिये जा सकते हैं।

१—जब राम गया, तब मैं सो रहा था

२—राम इधर गया है, श्याम उधर

३—जहाँ राम, वहाँ सीता

इन वाक्यों को इस तरह नहीं लिख सकते—

१—यदा राम गया, तदा मैं सो रहा था

२—राम इतः गया है, श्याम ततः

३—यत्र राम, तत्र सीता गयी

ऐसा लिखना हिन्दी में गलत होगा ; समझ तो सब जायँ गे ही !

परन्तु इन संस्कृत अव्ययों का युग्म-रूप से विशेष दशा में प्रयोग होता है—

१—यदा-कदा की तो बात दूसरी है

२—इतस्ततः पद्म-पराग सुरम्य था

३—यत्र-तत्र वही चर्चा सुनायी दे रही थी

४—कदाचित् वे भूल गये

अपने निजी अव्यय का जहाँ अभाव है, हिन्दी संस्कृत से लेती है ; जैसे—

१—यदि राम न आया, तो ?

'यदि' की जगह उर्दू वाले 'अगर' लगाते हैं ; परन्तु इधर-उधर, जब-तब आदि की जगह वे भी फारसी-अरबी का कोई अव्यय (उर्दू में) नहीं दे सकते । इन सब अव्ययों के

उपादान हैं वे सर्वनाम, जो सदा किसी भाषा में अपने ही रहते हैं।

कहीं-कहीं हिन्दी अपने अव्यय के साथ-साथ संस्कृत अव्यय को भी ग्रहण करती है—

आप ने वचन-भग किया, तो भी मैं क्षमा करता हूं

यद्यपि उसने बड़ी दुष्टता की ; तथापि मैं चुप ही रहा

हिन्दी जहाँ 'यद्यपि' को लेती है, उर्दू वहाँ 'अगरचे' लगाती है। 'यद्यपि' के साथ 'तथापि' ही अच्छा लगता है।

क्रिया-विशेषण

कई लोग हिन्द को इंगलैंड के आधार पर ही नहीं, हिन्दी को भी अंग्रेजी भाषा के पीछे चलाने का उपहसनीय प्रयास करते देखे जाते हैं। सम्भव है, देश की दूसरी भाषाओं को भी ऐसे सपूत मिले हों! ये लोग जब-तब, इधर-उधर और यहाँ-वहाँ आदि अव्यय-मात्र को 'क्रिया-विशेषण' कहते हैं! असल बात यह है कि अंग्रेजी-व्याकरण के 'ऐडवर्ब' शब्द का यह अन्धानुकरण है! अंग्रेजी में 'अव्यय' के लिए कदाचित् कोई शब्द है नहीं और इसी कारण उस के लिए 'एडवर्ब' शब्द का ही प्रयोग 'उपादन-लक्षणा' ('अजहत्स्वार्था' लक्षणा) से होता है। वहाँ कुछ ऐसे अव्यय हों गे, जिन से क्रिया-गत विशेषता प्रकट

होती होगी। इसलिए उन्हें 'ऐडवर्ब' कहा गया, 'ऐडजैक्टिव' के ढँग पर। परन्तु चूँकि वे 'ऐडवर्ब' अव्यय-जातीय थे; इस लिए वैसे सभी शब्दों को 'ऐडवर्ब' कहने की चाल पड़ गयी होगी। अपने यहाँ तो व्याकरण में 'अव्यय' शब्द पृथक् है। इस लिए 'ऐडवर्ब' की नकल पर सभी अव्ययों को 'क्रिया-विशेषण' कहना ठीक नहीं। जो अव्यय क्रिया की विशेषता प्रकट करें, वे ही 'क्रिया-विशेषण' कहलायेंगे; सब नहीं।

'राम धीरे-धीरे पढ़ता है' इस वाक्य में 'धीरे-धीरे' अव्यय ही है, जो 'क्रिया-विशेषण' है।

संस्कृत में अव्ययों के अतिरिक्त अन्य गुणवाचक विशेषण जब क्रिया की विशेषता प्रकट करते हैं, तब वे साधारणतः नपुंसक लिङ्ग, एक वचन रहते हैं—'रामः सुखं स्वपिति'; राम सुख से सोता है। हिन्दी में 'सुख से' यों 'से' विभक्ति के साथ क्रिया-विशेषण है। संस्कृत में भी 'रामः सुखेन सर्वाणि कार्याणि अकरोत्' इत्यादि रीति से 'सुखेन' तृतीया से क्रिया-विशेषण होता है। वहीं हिन्दी में 'से' है।

संस्कृत का अनुगमन करके हिन्दी में भी प्रथमा के एक वचन से 'क्रिया-विशेषण' चलता है। परन्तु यहाँ नपुंसक लिङ्ग तो है नहीं; इस लिए सदा पुल्लिङ्ग-एकवचन क्रिया-विशेषण रहता है-

राम अच्छा पढ़ता है
सीता अच्छा गाती है
लड़के अच्छा खेलते हैं
लड़कियां अच्छा गाती हैं

सर्वत्र 'अच्छा' 'क्रिया-विशेषण' है। 'लड़की कैसा पढ़ती है' आदि में 'कैसा' क्रिया-विशेषण ही है। 'पतीली खाली कैसे लायी ?' में भी वही बात है ; पर 'आ' को 'ए' हो गया है। इसे बहुवचन न समझ लें। कर्ता तथा कर्म स्त्रीलिङ्ग हैं। इसी तरह 'जैसे तू इतने काम करेगी,-वैसे ही यह भी कर लेना' में 'जैसा' का 'जैसे' और 'वैसा' का 'वैसे' है।

यदि—

अच्छा लड़का पढ़ता है

कहा जाय तो, फिर 'अच्छा' संज्ञा-विशेषण होगा:---

अच्छी लड़कियाँ पढ़ती हैं
अच्छे लड़के पढ़ते हैं

सर्वत्र लिङ्ग-वचन में परिवर्तन होगा। अर्थात् क्रिया की विशेषता जब कोई शब्द बतलाये, तो क्रिया-विशेषण और जब कोई शब्द संज्ञा की विशेषता बतलाये, तो संज्ञा-विशेषण। इसी तरह यदि कोई अव्यय क्रिया की विशेषता बतलाये, तो वह भी

क्रिया-विशेषण। जब कोई शब्द क्रिया की कोई विशेषता न बताये, तो फिर क्रिया-विशेषण कैसा ?

सुशीला मीठा बोलती है

बच्चे मीठा बोलते हैं

यहाँ 'मीठा' क्रिया-विशेषण है और--

मीठे आम लाओ

यहाँ 'मीठे' संज्ञा-विशेषण है।

आम मीठे लाओ

यहाँ 'मीठा' पर जोर हो गया। खट्टे नहीं, मीठे ही आम लाना।

बात यह कि हिन्दी में पर-प्रयोग सबल होता है। जिस पर जोर देना होता है, उसका प्रयोग बाद में होता है—

यहाँ थूको! थूको यहाँ!

इन दोनो वाक्यों को देखिए। प्रथम वाक्य में थूकना विधेय है, थूकने पर जोर है। दूसरे वाक्य में 'यहाँ' अधिकरण प्रधान है, उसी पर जोर है। मतलब यह कि थूकना हो, तो यहाँ थूको।

इसी लिए 'विधेय विशेषण' का प्रयोग संज्ञा के अनन्तर होता है--

यहां के लड़के सुशील हैं

राज-कर्मचारी भ्रष्ट हैं

कन्याएं अत्यन्त विनम्र हैं

सुशील, भ्रष्ट और विनम्र का प्रयोग विशेष्योंके बाद है ; इस इस लिए उनमें प्रधानता स्पष्ट है । और

सुशील लड़के पढ़ते हैं

भ्रष्ट राजकर्मचारी दण्ड पाते हैं

विनम्र कन्याएं सुखी रहती हैं

[illegible] विशेषण उद्देश्यात्मक हैं, विधेय नहीं हैं । विधान तो है पढ़ने का, दण्ड पाने का और सुखी रहने का । विधेय विशेषण को ही कुछ लोग 'पूरक' कहते हैं ! कहने दीजिए !

सारांश यह कि जोर देने के लिए पर-प्रयोग होता है । वैसे साधारणतः (संस्कृत की ही तरह) हिन्दी में पद-प्रयोग पर कोई जटिल बन्धन नहीं है । अंग्रेजी में जैसा बन्धन है—'कर्ता पहले रखो, कर्म बाद में रखो' वैसी कोई अनिवार्य्यता यहाँ नहीं है—

१—राम मेरे लिए पानी लाया

२—मेरे लिए राम पानी लाया

दोनो ठीक हैं । यदि 'राम' पर जोर देना हो, तब तो उसका पर-प्रयोग अच्छा रहेगा ही—

पानी मेरे लिए राम लाया

ये सब बातें स्वयं ज्ञात हो जाती हैं। वैसे साधारणतः पद-प्रयोग में कोई बन्धन नहीं है—

मा ने लड़के से पढ़ने के लिए कहा

लड़के से मा ने पढ़ने के लिए कहा

दोनो तरह से ठीक है। किसी-किसी हिन्दी-व्याकरण में या हिन्दी-परिष्कार की पुस्तक में अनावश्यक तूल दिया गया है कि यह पहले होना चाहिए और वह बाद में! इन झंझटों में आप न पड़ें। लोगों ने बखेड़ा खड़ा कर दिया है और यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि हिन्दी की एक पंक्ति भी लिखना लोहे के चने चबाना है! सो वह सब भ्रम है! या फिर जान-बूझ कर लोगों को घबराहट में डाल कर कुछ और करने की जी में है। आप ऐसी पुस्तकें पढ़ें ही न! हिन्दी की अच्छी पुस्तकें पढ़ते रहें; भाषा अपने आप आ जायगी; परिष्कार भी स्वतः होता चलेगा। वह तो साहित्य की चीज है।

हाँ, साधारणतः कर्ता कारक पहले आता है, तब कर्म और फिर क्रिया—

राम पुस्तक पढ़ता है

यदि 'करण' देना हो, तो वह कर्म से पहले आता है—

राम चाकू से कलम बनाता है

इसी तरह अपादान भी (कर्म से) पहले आता है—

राम लखनऊ से बम्बई गया

राम लखनऊ से खरबूजे लाया

अधिकरण भी--

राम अपने घर में पुस्तक पढ़ता है

सम्प्रदान भी कर्म से पहले ही प्रायः आता है—

राम ने श्याम को पुस्तक दी

मैं समझता हूँ, हिन्दी-वाक्यविन्यास इतना सरल है कि स्वतः हृदयंगम हो जाता है। इस सम्बन्ध में अन्यत्र कुछ विस्तार से कहा जायगा। कहा केवल यह जाय गा कि 'वाक्य-विश्लेषण' शीर्षक दे कर हिन्दी-व्याकरणों में जो अंग्रेजी की भोंड़ी नकल की गयी है, उस में माथा-पच्ची न करनी चाहिए। क्यों न करनी चाहिए; यह वहीं बताया जायगा; फ़ुरसत में।

पंचम अध्याय

क्रिया-प्रकरण

किसी भी भाषा में क्रिया-प्रकरण सब से अधिक महत्त्वपूर्ण हाता है। क्रिया-पद ही अन्य भाषा-भाषियों के लिए उलझन के रूप में सामने आते हैं; क्यों कि यहीं प्रत्येक भाषा अपनी विशेषता रखती है। यह विशेषता ही अन्य भाषा-भाषियों को उलझन के रूप में तंग करती है। हिन्दी भी क्रिया-पदों में अपनी विशेषता रखती है और यह विशेषता है इस का सरल मार्ग। इस सरलता को ही अनजाने लोग 'कठिनता' कह देते हैं। यही कारण है कि बार-बार अहिन्दी-भाषी बन्धुओं ने अपनी कठिनाई उपस्थित की और कहा कि :–" 'राम जाता है' और 'लड़की जाती है' यह भेद क्यों ? भेद है, तो फिर 'राम ने फल

खाया' और 'लड़की ने फल खाया' यहाँ उभयत्र 'खाया' क्यों ? यदि यहाँ 'फल' के अनुसार क्रिया है, तो 'लड़कियों ने अपनी सहेलियों को देखा' यहाँ क्या है ? कर्ता 'लड़कियों ने' स्त्री-लिंग है और बहुवचन है ; पर क्रिया 'देखा' है पुल्लिंग और एकवचन ! कर्म भी 'सहेलियों को' स्त्री-लिङ्ग-बहुवचन है ! तो, क्रिया न कर्ता के अनुसार, न कर्म के अनुसार ! हिन्दी-व्याकरण देखो, तो उस में लिखा है कि सकर्मक क्रियाएँ हिन्दी में भाववाच्य होती नहीं हैं ! तब, व्याकरण की आज्ञा मान कर यदि लिखते हैं—

''हम ने तुम देखे
तुम ने हम देखे

"तो हिन्दीवाले गलत बतलाते हैं ! कहते हैं—

''हम ने तुम को देखा
तुम ने हम को देखा

"यों शुद्ध-सही लिखो । परन्तु ये प्रयोग ('हम ने तुम को देखा' और 'तुम ने हम को देखा') भाववाच्य हैं, सकर्मक क्रिया के । क्रिया 'देखा' एकवचन है, जब कि कर्ता और कर्म बहुवचन हैं ! व्याकरण के अनुसार लिखो, तो हिन्दीवाले गलत बताते हैं और गलती ठीक करने के लिए व्याकरण देखो, तो वहाँ वही सब है ! हम करें, तो क्या करें ! राष्ट्रभाषा की यह बड़ी उलझन है ! "

निःसन्देह हमारे बन्धुओं का उपालम्भ अर्थ रखता है।

अवश्य ही हिन्दी-क्रियाओं की उलझन उन के सामने है, जिसे व्याकरण-ग्रन्थों ने और भी उलझा दिया है! कारण, कोई व्याकरण 'अंग्रेजी के आधार पर' लिखा गया है और कोई 'संस्कृत के आधार पर'! हिन्दी के आधार पर हिन्दी का व्याकरण बना ही नहीं! तब उलझन तो होगी ही! मेरे नाप का कुर्ता यदि गामा पहलवान के लिए कोई दर्जी बना दे, तो कैसा रहे गा? गंगा जी का प्रवाह हरिद्वार से कानपुर की ओर जाता है—पूरब की ओर; किन्तु कोई 'वर्णनकर्ता' यदि ऐसा वर्णन कर दे कि गंगा हिमालय से निकल कर दक्षिण की ओर बहती हैं, और समुद्र में जा गिरती हैं, तो उसे आप क्या कहेंगे? उस 'वर्णन' को सही मान कर दक्षिण की ओर गंगा जी को ढूँढ़ेंगे, तो मिलेगी? फिर वह 'वर्णनकर्ता' कहे, 'मैंने तो सुप्रसिद्ध टेम्स नदी के आधार पर गंगा का वर्णन किया है; चूँकि टेम्स का प्रवाह दक्षिण की ओर है, तो आप क्या कहेंगे? 'टेम्स' का नाम मैं ने यों ही उदाहरण के लिए ले दिया है। यह मतलब नहीं कि उस का प्रवाह सही-सही मैं बतला रहा हूँ। कहने का मतलब यह कि हिन्दी का व्याकरण हिन्दी के आधार पर नहीं बनाया गया; इसी लिए और गड़बड़ हुई। भारत की राष्ट्रीयता कोई इंगलैंड या रूस के आधार पर गढ़ने लगे, तो क्या होगा?

वही समझिए ! इस लिए, क्रिया-प्रकरण कुछ विस्तार से दिया जाय गा।

क्रिया के दो भेद—'तिङन्त' और 'कृदन्त'

क्रिया को मार्ग-भेद से मुख्यतः दो भागों में रखा गया है। इन दोनो भेदों को संस्कृत-व्याकरण में 'तिङन्त' और 'कृदन्त' नाम दिये गये हैं। हम हिन्दी में भी इन्हीं नामों को रूढ़-संज्ञा के रूप में लेते हैं। इन की परिभाषा थोड़े में स्पष्ट है—

१—तिङन्त क्रिया

में कर्ता या कर्म के अनुसार पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग रूप-भेद नहीं होता है; केवल 'पुरुष' तथा 'वचन' (कर्ता तथा कर्म के अनुसार) बदलते हैं—

राम चतुर है—लड़के अच्छे हैं
सीता चतुर है—लड़की अच्छी है

'राम है' और 'सीता है'। 'है' में कोई पुं-स्त्री का भेद नहीं है। हाँ, एकवचन कर्ता के साथ वह एकवचन 'है' के रूप में है, बहुवचन में उस का बहुवचन रूप 'हैं' आप के सामने है।

'पुरुष'-भेद से भी तिङन्त क्रिया में रूप-भेद होता है—

मैं ऐसा नहीं हूँ—तू ऐसी नहीं है

हम भी हैं—तुम भी हो

यह 'है' क्रिया जब अन्य क्रियाओं की 'सहायक' बनती है, तब भा तिङन्त ही रहती है; भले ही मुख्य क्रिया कृदन्त हो—

राम जाता है—लड़की जाती है

भूत काल में—

राम गया है—लड़की गयी है

यहां 'है' सहायक क्रिया ही है, जिस का प्रयोग वर्तमानता या वर्तमान-सान्निध्य प्रकट करने के लिए हुआ है। संस्कृत में भी कृदन्त क्रिया के साथ तिङन्त सहायक क्रिया रहती है—

रामः सुप्तः अस्ति—बालिका सुप्ता अस्ति

रामः वनं गतः आसीत्—सीता वनं गता आसीत्

'सुप्तः' तथा 'सुप्ता' और 'गतः' तथा 'गता' कृदन्त क्रियाओं में पुं-स्त्री का भेद है; पर सहायक क्रिया समान-रूप से है—'अस्ति'—'आसीत्'।

इस के अतिरिक्त विधि-आज्ञा आदि में सभी क्रियाएँ हिन्दी में तिङन्त रूप रखती हैं—

१—लड़का पुस्तक पढ़े, बालिका पुस्तक पढ़े

२—लड़के ने कहा—'मैं पुस्तक पढ़ूँ?' लड़की ने कहा—'मैं पुस्तक पढ़ूं?'

३—बच्चों ने कहा—'हम गेंद खेलें ?' बालिकाओं ने कहा—'हम गेंद खेलें ?'

इस तरह पुल्लिङ्ग तथा स्त्री-लिङ्ग में तिङन्त क्रिया के रूप एक-रस रहते हैं।

२—कृदन्त क्रिया का रूप

कृदन्त क्रिया कर्ता या कर्म के अनुसार पुं-स्त्री के भेद से रूप-भेद रखती है ; परन्तु 'पुरुष'-भेद का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ! 'पुरुष'-भेद प्रकट करने के लि ; सहायक क्रिया रहती है। उदाहरण—

राम गया, तू गया, मैं गया

सर्वत्र 'गया' क्रिया है ; 'पुरुष'—भेद के बिना ; जैसे—

रामः गतः, त्वं गतः, अहं गतः

परन्तु पुं-स्त्री का भेद होता है—

रामः गतः, सीता गता, फलानि गतानि

की तरह—

राम गया, सीता गयी

यहाँ 'कर्तृवाच्य' कृदन्त क्रिया है—'कर्तरि' 'त' (य) प्रत्यय है। कर्ता के अनुसार लिंग-भेद। 'त' को हिन्दी में 'य' हो गया है और उस में फिर अपनी पुंव्यंजक विभक्ति—'गया'। —स्त्रीलिंग 'गयी'।

कर्मवाच्य क्रिया हो, तो फिर कर्म के अनुसार भूतकालिक कृदन्त—

१—राम ने एक फल खाया

२—सीता ने एक फल खाया

३—तू ने एक फल खाया

४—मैं ने एक फल खाया

५—हम ने एक फल खाया

६—तुम ने एक फल खाया

सर्वत्र 'फल' के अनुसार पुल्लिंग, एकवचन क्रिया है—'खाया'। संस्कृत में—'मया, त्वया, रामेण, सीतया, या सर्वैः—फलं भुक्तम्' हो गा। सर्वत्र 'फलं भुक्तम्' ; कर्ता चाहे जैसा हो।

यदि कर्म बहुवचन हो, तो—

१—राम ने चार फल खाये

२—सीता ने चार फल खाये

३—हम ने (और तुम ने भी) चार फल खाये

कर्म स्त्रीलिंग हो, तो क्रिया भी स्त्रीलिंग हो जाय गी—

१—राम ने रोटी खायी

२—तू ने रोटी खायी

३—सब ने रोटी खायी

'खायी' कृदन्त क्रिया 'रोटी' के अनुसार है। 'पुरुष'-भेद का इस पर कोई प्रभाव नहीं।

यदि 'पुरुष'-भेद प्रकट करना है, तो वह काम सहायक क्रिया से हो गा। कर्तृवाच्य कृदन्त—

राम सोता है, मै सोता हूं, तुम सोते हो

भूतकाल में—

राम सोया है, मैं सोया हूं, तुम सोये हो

स्त्रीलिंग कर्ता में—

सीता सोती है, बालिकाएँ सोती हैं।

सकर्मक क्रिया भी यदि कृदन्त हो, तो भी 'पुरुष' की प्रतीति सहायक क्रिया के द्वारा ही हो गी—

राम काशी जाता है—सीता घर जाती है

मैं काशी जाता हूं—तुम काशी जाते हो

'है' 'हूँ' और 'हो' से अन्य पुरुष, उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष की प्रतीति है। भूत काल में भी—

राम सोया है—मैं सोया हूं

जहाँ तिङन्त सहायक क्रिया है, वहाँ उसी से 'पुरुष' की प्रतीति हो जाती है ; इस लिए 'मैं' आदि का प्रयोग आवश्यक नहीं रह जाता—

कह तो रहा हूं कि जाओ

'हूँ' की उपस्थिति में 'मैं' के प्रयोग की आवश्यकता नहीं।

यदि ऐसा न हो, सहायक क्रिया तिङन्त न हो, तो फिर यथावश्यक 'पुरुष' की प्रतीति विभिन्न शब्द-प्रयोगों से होगी—

राम गया था, मैं गया था, तू गया था

सर्वत्र 'गया था' होने से 'पुरुष'-अभिव्यक्ति के लिए 'राम' 'मैं' तथा 'तू' हैं।

सकर्मक क्रिया में भी—

राम रोटी खाता है—मैं रोटी खाता हूं

होता है। परन्तु किसी के उत्तर में—'आ रहा हू' कहने से 'मैं' की जरूरत नहीं; क्यों कि 'हूँ' से ही काम चल रहा है। संस्कृत में—'आगतोऽस्मि' कहने से 'अहम्' कहने की जरूरत नहीं रह जाती है।

हिन्दी में अधिकांश क्रियाएँ कृदन्त हैं; यह अभी आगे स्पष्ट होगा। यहाँ केवल इतना कहना था कि प्रायः प्रत्येक भाषा में क्रिया के चलने के लिए दो मार्ग होते हैं; हिन्दी के भी हैं। परन्तु हिन्दी ने कृदन्त-मार्ग अधिक पसन्द किया है; क्योंकि यह बहुत सरल तथा स्पष्ट है। हिन्दी की सरलता का यह एक प्रमुख कारण है कि इस की अधिकांश क्रियाएँ कृदन्त हैं।

क्रिया के 'वाच्य'

धातु से कोई प्रत्यय 'कर्तरि' होता है, कोई 'कर्मणि' और कोई

'भावे'। इस तरह के प्रत्यय हिन्दी में भी होते हैं और जो क्रिया-रूप बनते हैं, उन के नाम क्रमशः 'कर्तृवाच्य', 'कर्मवाच्य' और 'भाववाच्य' हैं। कर्तृवाच्य क्रिया कर्ता के अनुसार अपनी चाल रखती है और कर्मवाच्य 'कर्म' के अनुसार। दूसरे शब्दों में—कर्ता के अनुसार चलनेवाली क्रिया 'कर्तृवाच्य' और 'कर्म' के अनुसार चलनेवाली 'कर्मवाच्य'। कभी क्रिया अपनी गति स्वतंत्र रखती है; न कर्ता के अनुसार, न कर्म के अनुसार। तब उसे 'भाववाच्य' कहते हैं। भाववाच्य क्रिया सदा पुल्लिंग-एकवचन रहती है।

हिन्दी में वर्तमानकाल की सब क्रियाएँ कर्तृवाच्य हैं—

राम सोता है, लड़की सोती है, लड़के सोते हैं

सर्वत्र कर्ता के अनुसार क्रिया है। 'सोती' स्त्रीलिंग और 'सोते' पुल्लिंग। सकर्मक क्रिया भी—

लड़का रोटी खाता है—लड़की फल खाती है

मैं दवा पीता हूं—तुम दवा पीते हो

सर्वत्र कर्ता के अनुसार क्रिया में परिवर्तन स्पष्ट है। 'दवा' (कर्म) से क्रिया का कोई मतलब नहीं। यह तो पहले ही कह दिया गया है कि 'सोता', 'खाता' आदि कृदन्त क्रियाएँ हैं और 'है' सहायक क्रिया तिङन्त। तिङन्त से 'पुरुष'-भेद प्रकट होता है।

भूतकाल

हिन्दी में भूतकाल की सामान्य क्रिया अकर्मक अवस्था में कर्तृवाच्य और कभी-कभी भाववाच्य होती है। वर्तमान ('जाता' 'खाता' आदि) की तरह यह भी कृदन्त है—'बालक रोया—बालिका रोयी'।

इसी तरह—

लड़का उठा, लड़के उठे, मुन्नी बैठी
मैं उठा, तुम उठे, मैं उठी, तू बैठी
लड़का बैठा, लड़की जागी आदि

अकर्मक के भाववाच्य रूप—

इतने जल में मैं ने नहाया, तुम ने नहाया और सब ने नहाया
संस्कृत में—मया स्नातम्, युष्माभिः स्नातम्, सर्वैः स्नातम्

सकर्मक क्रिया भूतकाल में या तो कर्मवाच्य हो गी, या फिर भाववाच्य।

कर्मवाच्य के उदाहरण :---

लड़कियों ने कहानी सुनायी, कथाएँ सुनायीं
बच्चों ने एक बात कही, एक किस्सा कहा
तुम लोगों ने रोटी खायी, रोटी खायीं
मा ने फल खाया—लड़के ने पूड़ियाँ खायीं

सब जगह 'कर्म' के अनुसार क्रिया के लिंग-वचन हैं ; 'कर्ता' की ओर वह देखती नहीं है।

संस्कृत में भी अकर्मक क्रिया (भूतकाल में कृदन्त) कर्तृवाच्य रहती है और सकर्मक कर्मवाच्य—

बालकः उत्थितः , बालकाः उत्थिताः, बालिका उत्थिता

वृक्षः पतितः, लता पतिता, फलानि पतितानि

ये कृदन्त अकर्मक क्रियाएँ कर्तृवाच्य हैं। कर्ता के अनुसार इन का लिंग-भेद स्पष्ट है। परन्तु सकर्मक कृदन्त 'कर्मवाच्य' होती हैं—

बालकेन दुग्धं पीतम्—बालक ने दूध पिया

बालिकया दुग्धं पीतम्—बालिका ने दूध पिया

त्वया दुग्धम् पीतम्—तू ने दूध पिया

मया दुग्धम् पीतम्—मैं ने दूध पिया

सर्वैः दुग्धम् पीतम्—सब ने दूध पिया

'दुग्धम्' के अनुसार सर्वत्र 'पीतम्' रहे गा ; जैसे हिन्दी में—'दूध' के अनुसार 'पिया'—

बालक ने, सीता ने, तू ने, हम ने, सब ने

दूध पिया

कर्म स्त्रीलिंग कर दें, तो—

सुरैः सुधा पीता

(देवताओं ने सुधा पी)

सुरैः अमृतम् पीतम्

(देवताओं ने अमृत पिया)

स्पष्ट ही हिन्दी ने संस्कृत-व्याकरण का पूर्ण अनुगमन किया है।

यद्यपि संस्कृत में सकर्मक कृदन्त ('त'-प्रत्ययान्त) क्रिया कर्मवाच्य होती है और अकर्मक होती है कर्तृवाच्य ; परन्तु जिन धातुओं का 'जाना-आना' अर्थ है, वे सकर्मक होने पर भी कर्तृवाच्य ही रहती हैं, कमवाच्य नहीं—

रामः काशीं गतः

सीता नगरं गता

यहाँ क्रिया 'काशी' तथा 'नगर' (कर्म) के अनुसार नहीं ; प्रत्युत कर्ता ('राम' और 'सीता') के अनुसार है—'गतः-गता'। हिन्दी में भी जिन धातुओं का 'जाना—आना' अर्थ है, उन से कृदन्त 'य' प्रत्यय 'कर्मणि' नहीं, 'कर्तरि' ही होता है।

राम काशी गया

सीता शहर गयी

यह भी समझ लीजिए कि सकर्मक धातुओं के भूतकाल में कुछ ही जगह वाच्य-परिवर्तन हो सकते हैं ; या वाच्य-भेद से प्रयोग हो सकते हैं ; जैसे—

मैं ने लड़का देखा (कर्मवाच्य)

मैं ने लड़के को या लड़कों को देखा (भाववाच्य)

तो भी, सूक्ष्म अर्थ-भेद विद्यमान है। न समझ में आये, तो एक ही अर्थ में वाच्य-भेद समझ लें। परन्तु ऊपर चारो उदाहरणों में सकर्मक 'देखा' क्रिया जो भाववाच्य है, उस में कोई परिवर्तन हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में यह कहना कितना गलत है कि 'हिन्दी में सकर्मक क्रिया के भाववाच्य प्रयोग होते ही नहीं' !

संस्कृत में 'रामः ग्रन्थं पठति' को कर्मवाच्य में यों बदल सकते हैं—'रामेण ग्रन्थः पठ्यते'। परन्तु हिन्दी में ऐसा वाच्य-परिवर्तन सम्भव नहीं। हिन्दी में—

'राम ग्रन्थ पढ़ना है'

इस कर्तृवाच्य को—

'राम से ग्रन्थ पढ़ा जाता है'

ऐसा कर्मवाच्य में परिवर्तन न हो गा। यदि किसी व्याकरण में ऐसे वाच्य-परिवर्तन का विधान हो, तो उसे गलत समझें और

अच्छा तो यही है कि ऐसे भ्रष्ट व्याकरण आप पढ़ें ही नहीं। 'राम से पुस्तक पढ़ी जाती है' इस तरह हिन्दी में प्रयोग होता ही नहीं है। अर्थात् वर्तमान काल की अकर्मक-सकर्मक सभी क्रियाएँ कर्तृवाच्य ही हैं। इन का प्रयोग कर्मवाच्य या भाववाच्य हो ही नहीं सकता।

इसी तरह—'राम पुस्तक पढ़ेगा' आदि भविष्यत् काल की भी सकर्मक-अकर्मक सभी तरह की क्रियाएँ कर्तृवाच्य ही रहेंगी; कर्मवाच्य या भाववाच्य में इन्हें नहीं लाया जा सकता। अर्थात् वर्तमान काल की ही तरह भविष्यत् काल की क्रियाएँ भी केवल कर्तृवाच्य होती हैं।

विधि-आज्ञा आदि की 'करे'-'करें' तथा 'पढ़'-'पढ़ो' आदि क्रियाएँ भी कर्तृवाच्य ही हैं; पर तिङन्त। कर्ता के अनुसार इन के 'पुरुष' तथा 'वचन' बदलते हैं। इन्हें भी कर्मवाच्य या भाववाच्य में नहीं बदल सकते।

भूतकाल की अकर्मक क्रिया कर्तृवाच्य होती है—'राम उठा' 'लड़की रोयी'। इन का भी वाच्य-परिवर्तन नहीं होता। सकर्मक क्रिया भूतकाल में या तो भाववाच्य या कर्मवाच्य होती है। 'मैं ने तुम को देखा' ये भाववाच्य क्रियाएँ किसी भी दूसरे वाच्य में

बदली नहीं जा सकतीं। इसी तरह—'मैं ने भात खाया', 'रोटी खायी' इस तरह की सकर्मक कर्मवाच्य क्रिया का भी वाच्य नहीं बदल सकता। हिन्दी में—

मैं ने भात को खाया

लड़के ने रोटी को खाया

इस तरह के भाववाच्य प्रयोग नहीं होते हैं। इस लिए वैसी क्रियाओं का भी वाच्य-परिवर्तन सम्भव नहीं है।

इस लिए 'राम ने लड्डू खाया' का वाच्य-परिवर्तन जो 'राम से लड्डू खाया गया' ऐसा 'व्याकरण' की पुस्तकों में लिखा है; गलत है! उन लोगों ने 'राम ने लड्डू खाया' को 'कर्तृवाच्य' लिख-समझ कर 'राम से लड्डू खाया गया' यह उस का 'कर्म-वाच्य' प्रयोग बताया है! परन्तु हैं दोनो जगह कर्मवाच्य प्रयोग। परिवर्तन क्या हुआ? परन्तु 'राम से लड्डू खाया गया' ऐसा प्रयोग हिन्दी में एकदम गलत है। सारांश यह कि हिन्दी क्रियाओं में वाच्य-परिवर्तन प्रायः होता ही नहीं है।

हाँ, शक्ति-निषेध आदि में वर्तमान तथा भविष्यत् में भी क्रिया के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य प्रयोग होते हैं; यह अलग बात है—

दन्त-पीड़ा के कारण राम से रोटी नहीं खायी जाती

पावं में दर्द होने के कारण मुझ से चला नहीं जाता

यों कर्मवाच्य तथा भाववाच्य प्रयोग होते हैं।

भविष्यत् में भी—

लड़की से भात निगला न जाय गा

मुझ से चला न जाय गा

इस तरह कर्मवाच्य और भाववाच्य प्रयोग हों गे।

सो, यह एक अलग बात है।

यह प्रासंगिक चर्चा हुई कि हिन्दी में वाच्य-परिवर्तन की वैसी गुंजाइश नहीं, जैसी कि संस्कृत और अंग्रेजी आदि में है। वाच्य-परिवर्तन का झमेला हिन्दी ने स्वीकार नहीं किया।

विधि-आज्ञा आदि

हिन्दी में विधि-आज्ञा आदि प्रकट करने वाली क्रियाएँ— पढ़े, करें आदि—कर्तृवाच्य हैं; परन्तु कृदन्त नहीं, तिङन्त। कर्ता का अनुगमन कर के भी इन में पुल्लिग-स्त्रीलिंग में कोई रूप-भेद नहीं होता—राम पढ़े, सीता पढ़े। हाँ, 'पुरुष' तथा 'वचन' कर्ता के अनुसार बदलते हैं—

राम पढ़े, बच्चे पढ़ें

लड़की पढ़े, लड़कियाँ पढ़ें

वचन-भेद स्पष्ट है। 'पुरुष' के साथ वचन-भेद देखिए—

प्रथम पुरुष—बच्चा पुस्तक पढ़े, बच्चे पुस्तक पढ़ें

मध्यम पुरुष—तू पुस्तक पढ़, तुम पुस्तक पढ़ो

उत्तम पुरुष—मैं पुस्तक पढ़ूँ, हम पुस्तक पढ़ें

उत्तम पुरुष में ऐसी क्रिया प्रायः प्रश्न आदि में ही आती है—'पढ़ूँ'? 'काम करूँ?' 'जाऊँ'?

भविष्यत् काल

हिन्दी में भविष्यत् काल की क्रियाएँ भी कर्तृवाच्य रहती हैं और अन्ततः कृदन्त हैं। 'गा' का बहुवचन 'गे' और स्त्रीलिंग में 'गी' होता है—'था, थे, थी' की तरह। इस से स्पष्ट है कि 'था' की तरह 'गा' भी एक अलग क्रिया (कृदन्त) है, जिस का प्रयोग भविष्यत् काल प्रकट करने के लिए होने लगा और फिर यह एक विभक्ति-मात्र समझी जाने लगी। कारण, 'गा' का स्वतन्त्र प्रयोग लुप्त हो गया! 'था' का स्वतन्त्र प्रयोग है; इस लिए इसे 'सहायक क्रिया' समझा जाता है। कभी-कभी किसी-किसी क्रिया का स्वतन्त्र प्रयोग होते रहने पर भी संयुक्त अवस्था का उस का रूप एक प्रत्यय समझ लिया जाता है। संस्कृत की 'पिपठिषति' आदि संयुक्त क्रियाओं में 'पठ्' आदि के साथ इच्छार्थक 'इष्' धातु स्पष्ट है, जो बाद में एक प्रत्यय समझी जाने लगी। 'है'

तिङन्त सहायक क्रिया ('अस्' से) है और भूतकाल में 'था' कृदन्त।

सो, ये सब निरुक्त या भाषा-विज्ञान की बातें हैं कि 'गा' का निकास कहाँ से है और मूलतः यह क्या है ! यहाँ इतना समझिए कि विधि आदि के जो रूप हैं---'पढ़े-पढ़ें' आदि---उन के अन्त में 'गा' लगा देने से भविष्यत् काल के रूप बन जाते हैं। 'ग' मूल रूप है, जिस में हिन्दी का पुं--प्रत्यय 'आ' लगा कर 'गा' बनाया गया। इस का बहुवचन ('गा' से) 'गे' होता है और स्त्रीलिंग रूप 'गी'। विधि-आज्ञा आदि में मध्यम पुरुष के पढ़' आदि को 'पढ़े' आदि हो जाता है—

प्र० पु०	बच्चा पढ़े गा—मुन्नी पढ़े गी
,,	बच्चे पढ़ें गे,—लड़कियाँ पढ़ें गी
म० पु०	तू पढ़े गा—तू पढ़े गी
,,	तुम पढ़ो गे—तुम पढ़ो गी
उ० पु०	मैं पढ़ूं गा—मैं पढ़ूं गी
,,	हम पढ़ें गे—हम पढ़ें गी

सब कर्तृवाच्य हैं।

सकर्मक भी अकर्मक

सकर्मक क्रिया भी अकर्मक की तरह प्रयुक्त होती है ; यदि

कर्म की विवक्षा न हो ; कर्म न बोला जाय। तब ऐसी क्रिया का भी भूतकाल में भाववाच्य ही प्रयोग होगा ; अर्थ-भेद से कहीं कर्तृवाच्य भी—

लड़कों ने बहुत पढ़ा

लड़की ने बहुत पढ़ा

हम ने बहुत पढ़ा

तू ने बहुत पढ़ा

सर्वत्र क्रिया 'पढ़ा' है ; एकवचन-पुल्लिङ्ग। यही भाववाच्य है।

कर्म की उपस्थिति में कर्मवाच्य हो गी--

लड़की ने वेद पढ़ा

लड़कों ने पुस्तक पढ़ी

तू ने पुस्तकें पढ़ीं

सब जगह कर्म के अनुसार परिवर्तन है। मूलतः अकर्मक क्रियाएँ तो भूतकाल में प्रायः कर्तृवाच्य होती ही हैं—'राम सोया नहीं' 'लड़की जागी नहीं।'

इस तरह हिन्दी का क्रिया-प्रकरण बहुत स्पष्ट है और मार्ग सरल। संक्षेप में क्रिया के वाच्य तथा काल आदि का परिचय दिया गया। 'काल' के भेद-विशेष भी बहुत सुगम हैं। कुछ उदाहरण लीजिए।

भूतकाल के भेद

बतलाया गया है कि भूतकाल में अकर्मक क्रियाएँ कर्तृवाच्य तथा सकर्मक कर्मवाच्य या भाववाच्य होती हैं और ये सब कृदन्त हैं ; अर्थात् कर्त्ता या कर्म के अनुसार जब ये चलती हैं, तो पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग में रूप-भेद करती हैं।

सामान्य भूतकाल में अकर्मक—

लड़का जागा—लड़की जागी

यों रूप हैं। सकर्मक के—

राम ने रोटी खायी

गोविन्द ने फल खाये

यों कर्मवाच्य ; और---

लड़कियों ने लड़कियों को देखा

इस तरह भाववाच्य प्रयोग सामान्य भूतकाल में हैं।

क्रिया-निष्पति अभी-अभी हुई है, ऐसा प्रकट करना हो, तो वर्तमान काल की सामान्य सहायक क्रिया 'है' जोड़ देते हैं--- ऐसा भूतकाल, जो वर्तमान से लगा हुआ---

राम ने रोटी खायी है

गोविन्द ने फल खाये हैं

'है' और 'हैं' कर्म के अनुसार एकवचन और बहुवचन। 'है' तिङन्त है ; इस लिए पुं-स्त्री में समान रूप।

अकर्मक (कर्तृवाच्य):—

लड़का सोया है—मैं सोया हूँ

लड़के सोये हैं—तुम सोये हो

लड़की सोयी है--हम सोये हैं

सकर्मक भाववाच्य—

लड़की ने मा को देखा है

इसी तरह सर्वत्र सामान्य भूतकाल के साथ वर्तमान 'है' लगा देने से 'आसन्न भूतकाल' के प्रयोग होते हैं।

'पूर्ण भूतकाल' बनाने के लिए सामान्य भूतकाल के साथ सहायक क्रिया का भूतकालिक रूप 'था' जोड़ते हैं, जो कृदन्त होने से पुलिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग में बदलता है। दो भूत मिल कर 'पूर्ण भूत' जैसे---'लाल सुर्ख' कहने से 'अत्यधिक लाल' समझा जाता है--

राम ने रोटी खायी थी

घर में लड़के सोये थे

लड़कियों ने पुस्तक पढ़ी थीं

यों पूर्ण भूतकाल हुआ।

भविष्यत् सदा सन्दिग्ध है। इसी लिए भूतकाल में, यदि

क्रिया के होने में सन्देह हो, तो सामान्य भूतकाल को क्रिया 'गा' के साथ आती है—

राम ने रोटी खायी हो गी

वहाँ लड़के खड़े हों गे

तू ने पुस्तक पढ़ी हो गी

इस तरह की छोटी-छोटी बातें रूपतः मालूम हो जाती हैं। जैसे—वर्तमान काल की क्रिया भी यदि 'गा' के साथ प्रयुक्त हो, तो भी (क्रिया के करने में) सन्देह प्रकट होता है--

राम पुस्तक पढ़ना हो गा

लड़की खेलती हो गी

क्रिया का 'हेतुहेतुमद् भाव' आदि में प्रयोग भी बहुत सरल है। भूतकाल में—

वर्षा होती, तो नाज होता

यों कृदन्त कर्तृवाच्य प्रयोग होते हैं। भविष्यत्—

वर्षा होगी, तो नाज होगा

वर्तमान में —

वर्षा होती है, तब नाज होता है।

परन्तु ऊपर भूतकाल की 'हेतुहेतुमद् भाव' वाली क्रिया से प्रकट है कि क्रिया की निष्पत्ति हुई नहीं है। ऐसी बातों के विस्तार की जरूरत नहीं।

षष्ठ अध्याय

संयुक्त क्रियाएँ

अर्थ-विशेष प्रकट करने के लिए, कोई विशेष मनोभाव प्रकाशन के लिए या धातु के सामान्य अर्थ में विशेष गुणाधान के लिए, मुख्य धातु के साथ किसी दूसरी धातु को सहायक रूप से जब प्रयुक्त करते हैं, तो उसे 'संयुक्त क्रिया' कहते हैं। ऐसी संयुक्त क्रियाएँ संस्कृत तथा हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओं में हैं। (अंग्रेजी-फारसी में भी होंगी।) पर हिन्दी में तो संयुक्त क्रियाएँ बहुत अधिक हैं। इन का प्रयोग बहुत सरल है! व्याकरण पढ़े बिना ही वैसी संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग कोई भी अहिन्दीभाषी सरलता से करने लगता है; थोड़ा सा भी सम्पर्क होने पर। इन संयुक्त क्रियाओं से मन की बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो

जाती है। उदाहरणार्थ—'कर' धातु लीजिए, जिस का सामान्य रूप या भाववाचक संज्ञा 'करना' है। करना, खाना, पीना आदि भाववाचक संज्ञाओं से प्रत्ययांश ('ना') हटा लेने पर जो प्रकृत्यंश बच जाता है, वही 'धातु' है। हिन्दी में सभी धातु स्वरान्त हैं, कोई भी व्यञ्जनान्त नहीं है।

हाँ, तो 'कर' धातु के साधारण प्रयोग हैं—'करता है', 'करेगा' 'किया' आदि। इस के साथ 'चुकना' क्रिया ('चुक धातु') सहायक रूप से लगा दी जाय, तो 'पूर्ण निष्पत्ति' प्रकट होने लगती है—

राम तब काम करता है
राम तब काम कर चुकता है

भविष्यत् में—

राम तब काम करेगा
राम तब काम कर चुकेगा

भूतकाल में—

'राम काम करता है'---'राम काम कर चुकता है' यों वर्तमान में (तथा भविष्यत् में) तो साधारण 'कर' का और संयुक्त 'कर चुकने' का प्रयोग समान रूप से कर्तृवाच्य है। परन्तु भूतकाल में भेद है—

राम ने काम किया

और—

राम काम कर चुका

बहुवचन कर्म कर दें—

राम ने वे काम किये

और—

राम वे काम कर चुका

कर्म में स्त्रीलिंग—

राम ने सन्ध्या की

और—

राम सन्ध्या कर चुका

यों अन्तर है ! क्या कारण ? समझने की बात है।

हमने पहले बताया है कि हिन्दी में वर्तमान तथा भविष्यत् काल की क्रियाएँ कृदन्त हैं; पर कर्तृवाच्य। अकर्मक-सकर्मक सभी क्रियाएँ कर्तृवाच्य। सहायक क्रिया भी यहाँ कर्तृवाच्य ही रहेगी। कर्तृवाच्य ही (वर्तमान-भविष्यत् में) आप ऊपर देख रहे हैं—'राम सन्ध्या करता है' 'सीता नमस्कार करती है'। उसी तरह—'राम सन्ध्या कर चुकता है'—'सीता ईश्वर-वन्दन कर चुकती है'। भविष्यत् में भी ऐसा ही—'राम सन्ध्या

कर चुके गा' 'सीता काम कर चुके गी'। परन्तु भूत काल में अन्तर हो जाता है। इस का कारण यह है कि संयुक्त क्रिया में—

'वाच्य' सहायक क्रिया के अनुसार

होता है। कहा जा चुका है कि भूतकाल में अकर्मक क्रिया कर्तृवाच्य रहती है और सकर्मक या तो कर्मवाच्य, या भाववाच्य। केवल गत्यर्थक सकर्मक क्रियाएँ (जाना-आना आदि) भूतकाल में भी कर्तृवाच्य रहती हैं। संयुक्त क्रिया में सहायक क्रिया को प्रधानता मिलती है—'वाच्य' के सम्बन्ध में। आगे मोर्चे पर तो वही है न! सो, जिस मार्ग से वह चले गी, उसी से मुख्य क्रिया को चलना हो गा। 'सहायक' का अनुगमन करना ही हो गा।

'करना' क्रिया सकर्मक है और इसी लिए भूतकाल में कर्म-वाच्य या भाववाच्य रहती है। परन्तु 'चुकना' अकर्मक क्रिया है।—इस लिए 'कर' के साथ सहायक रूप से इस का प्रयोग होने पर, भूतकाल में कर्तृवाच्य प्रयोग ही हो गा; कर्मवाच्य या भाववाच्य नहीं—

१—लड़का सन्ध्या कर चुका

२—लड़के सन्ध्या कर चुके

३—लड़की काम कर चुकी

४—लड़कियाँ काम कर चुकीं

साधारण दशा में—

१—लड़के ने सन्ध्या की

२—लड़कों ने सन्ध्या की

३—लड़की ने काम किया

४—लड़कियों ने काम किया

सर्वत्र कर्म के अनुसार क्रिया में पुं-स्त्री का भेद है। 'ने' विभक्ति कर्ता में तभी लगती है, जब भूतकाल की क्रिया साधारण दशा में हो और सकर्मक हो; यानी कर्मवाच्य या भाववाच्य प्रयोग हो। अकर्मक-क्रिया भूतकाल में कर्तृवाच्य ही रहती है; यह स्पष्ट हो चुका है—'लड़का जागा'—'लड़की जागी'।

'चुकना' सहायक क्रिया अकर्मक है; इस लिए भूतकाल में प्रयोग कर्तृवाच्य बहुत ठीक है।

इस के विपरीत, साधारण अवस्था की 'मुख्य क्रिया' यदि अकर्मक हो; पर उस की सहायक क्रिया मूलतः सकर्मक हो, तो फिर भूतकाल में उस संयुक्त क्रिया का प्रयोग (कर्मवाच्य तो नहीं) भाववाच्य हो गा। कर्तृवाच्य इस लिए न हो गा; क्योंकि सहायक क्रिया सकर्मक है। और, कर्मवाच्य प्रयोग इस लिए न हो गा; क्योंकि 'कर्म' की उपस्थिति ही नहीं! इस लिए 'भाववाच्य' प्रयोग हो गा---

लड़का तब **रोया**

लड़की तब **रोयी**

लड़के तब **रोये**

'दिया' ('देना' के भूतकालिक) प्रयोग की सहायता लेने पर—

लड़के ने तब **रो** दिया

लड़की ने तब **रो** दिया

लड़कियों ने तब **रो** दिया

यों 'रो दिया' भाववाच्य प्रयोग हो गा। सहायक अवस्था में सभी को 'स्वार्थ' छोड़ना पड़ता है। 'देना' क्रिया ने भी यहाँ 'अपना' अर्थ बिलकुल छोड़ दिया है। 'रो दिया' का अर्थ 'रो पड़ा' भर है। यह नहीं कि 'रो' कोई चीज हो, जो किसी को दी गयी हो। यदि ऐसा हो, 'रो' नाम की कोई चीज हो, तो फिर 'देना' क्रिया मुख्य हो गी और कर्मवाच्य या भाववाच्य प्रयोग भूतकाल में हो गा। तब 'रो' को या तो पुल्लिङ्ग मानें गे, या स्त्रीलिङ्ग और—

राम ने गोविन्द को **'रो'** दी (स्त्री०)

लड़की ने गोविन्द को **'रो'** दिया (पु०)

सारांश यह कि संयुक्त क्रिया में, भूतकाल में, वाच्य का प्रभाव आगे (मोर्चे) की सहायक क्रिया पर पड़ता है। उसी के

अनुसार 'वाच्य' होता है। वर्तमान तथा भविष्यत् आदि में भी सहायक क्रिया ही वाच्य-दृष्टि से सामने रहती है; परन्तु वहाँ अकर्मक-सकर्मक सभी क्रियाएँ कर्तृवाच्य ही होती हैं; इस लिए कोई अन्तर सामने नहीं आता। भूतकाल में सब स्पष्ट हो जाता है।

अलक्ष्य-संयुक्तता

कभी-कभी कोई ऐसी संयुक्त क्रिया सामने आती है, जिसे आप समझ भी नहीं सकते। हिन्दी की 'लाना' ऐसी ही संयुक्त क्रिया है। हम ने पीछे अनेक बार कहा है कि सकर्मक क्रियाएँ हिन्दी में, भूतकाल में, कर्मवाच्य या भाववाच्य रहती हैं; कर्तृ-वाच्य कतई नहीं। परन्तु—

१—राम गाड़ी लाया

२—लड़की फल लायी

३—लड़के रोटी लाये

यहाँ 'लाना' क्रिया कर्मवाच्य कहाँ है? यह तो कर्ता के अनुसार—

लड़की लायी, राम लाया, लड़के लाये

यों कर्तृवाच्य स्पष्ट है। तब उस नियम का क्या हुआ, जिस में कहा गया था कि सकर्मक क्रियाएँ, हिन्दी में, भूतकाल में, कर्तृवाच्य नहीं, कर्मवाच्य या भाववाच्य होती हैं?

प्रश्न स्वाभाविक है और बड़े लोगों को भी चक्कर में डाल सकता है। परन्तु ध्यान देने पर न कहीं कोई भ्रम, न सन्देह! बात यह है कि 'लाना' संयुक्त क्रिया है—'लेना' तथा 'आना' के मेल से बनी है। अन्य संयुक्त क्रियाओं में एक प्रधान होती है, दूसरी (सहायक) अप्रधान। सहायक क्रिया का अर्थ प्रायः उपसर्जनीभूत हो जाता है—उड़ जाता है, या दब जाता है। परन्तु 'लाना' संयुक्त क्रिया के दोनो घटक स्वार्थ से भरे हुए हैं—इसी लिए वैसे संघटित हो गये हैं, चिपक गये हैं। 'लाना' का अर्थ यही है कि किसी चीज को 'लेना' और 'ले कर' फिर 'आना'। अर्थात् 'ले आना' का संयुक्त स्वरूप है—'लाना'। हमारी चीज 'ले आना' और हमारी चीज 'लाना' में क्या अन्तर है? 'ले' धातु के साथ 'आ' धातु आ जमी। तब बीच का पर्दा (े) 'ले' ने हटा दिया—'ल् आ'। मिल कर बन गये 'ला'। सो, यह 'लाना' क्रिया की धातु ('ला') संयुक्त है। उस में 'आ' सहायक रूप से है। सन्धि ऐसी जम कर हुई है कि दोनो एक समझे जाने लगे! कोई पहचान ही नहीं सकता!

'लड़की कपड़ा लायी'

इस तरह के भूतकाल में, कर्तृवाच्य प्रयोग देख कर, मैं भी ऊहा-पोह में पड़ा कि यह बात क्या है! मैं ने जो नियम बनाया, उस का यह अपवाद? परन्तु 'अपवाद है' कह कर मैं सरलता

से चुप हो जाने वाला नहीं। ब्रजभाषा-व्याकरण की भूमिका में वैसा नियम निर्धारण कर देने के अनन्तर मेरे सामने 'लाना' की उलझन आयी। मैं ने इस पर सोचा। सोचते-सोचते बात समझ में आयो और तब मैं ने बिहार की एक पत्रिका में प्रकट किया। ब्रजभाषा-व्याकरण के नूतन संस्करण में भी लिख दिया और यहाँ भी स्पष्ट किया गया। इस का मतलब यह कि कोई समझे, चाहे न समझे, भाषा का एक सुनिश्चित प्रवाह होता है। उसके 'अपवाद' भी तथ्य लिये होते हैं।

हाँ, तो 'लेना' क्रिया सकर्मक है और उस के भूतकाल में कर्म-वाच्य या भाववाच्य प्रयोग होते हैं—

१—महिला ने यह लड़का गोद लिया है

२—महिला ने इस लड़की को गोद लिया है

'आना' क्रिया भी सकर्मक है ; पर 'गत्यर्थक' होने के कारण भूतकाल का 'य' प्रत्यय इस से 'कर्तरि' होता है, 'कर्मणि' या 'भावे' नहीं—

१—लड़का वापस काशी आया

२—लड़की वापस घर आयी

'काशी' तथा 'घर' कर्म हैं—अधिकरण न समझ लीजिए गा। 'लड़का काशी में पढ़ता है' और 'लड़की घर में काम करती है'

इन वाक्यों में 'काशी' तथा 'घर' अवश्य अधिकरण हैं। ऊपर के वाक्यों में ऐसी बात नहीं। वहाँ वे कर्म हैं। संस्कृत के—

१—तदा बालकः काशीं प्रत्यागतः

२—तदा बालिका गृहं प्रत्यागता

के 'काशीं' तथा 'गृहं' की तरह समझिए। उसी तरह सकर्मक होने पर भी, भूतकाल में, 'कर्तरि' प्रत्यय है।

सो—

'राम धोती ले आया'

फिर संयुक्त—

'राम धोती लाया'

यों समझिए। साफ है कि 'लाया' में 'लेना' तथा 'आना' क्रियाएँ हैं। अन्त में 'आना' है और इस लिए उसी के अनुसार भूतकाल में कर्तृवाच्य प्रत्यक्ष सामने है।

इसी तरह 'दे गया' आदि समझिए। 'देना' सकर्मक क्रिया के—

'राम ने पुस्तक दी'

ऐसे कर्मवाच्य प्रयोग होंगे। परन्तु 'जाना' सकर्मक 'गत्यर्थ' है। फलतः उसी के अनुसार—

१—लड़का धोती दे गया

२—लड़की कपड़ा दे गयी

३—लड़के खीर दे गये

यों कर्तृवाच्य प्रयोग होंगे ; 'कर्म' से कोई मतलब नहीं।

१—लड़का सोया

२—मैं सोया

३—हम सोये

४—लड़की सोयी

ये अकर्मक के कर्तृवाच्य प्रयोग हैं। परन्तु 'लेना' सहायक क्रिया लगा कर संयुक्त क्रिया बनने पर कर्तृवाच्य रूप न रहेगा ; क्योंकि 'लेना' मूलतः सकर्मक है। 'लेना' का मुख्य अर्थ न रहने से 'कर्म' का प्रयोग हो नहीं सकता ; इस लिए भूतकाल में 'कर्म-वाच्य' होने की भी गुंजाइश नहीं। फलतः भाववाच्य रूप यों होते हैं—

१—लड़के ने सो लिया

२—मैं ने सो लिया

३—हम ने सो लिया

४—लड़की ने सो लिया

इस तरह यह स्पष्ट हुआ कि संयुक्त क्रिया के, भूतकाल में, वाच्य-भेद या रूप सहायक क्रिया को देख कर, उसी को प्रधानता दे कर निष्पन्न होते हैं। यह बहुत साफ बात है ; इस लिए अधिक चर्चा अनावश्यक है।

किस-किस सहायक क्रिया के प्रयोग से कहाँ कैसी संयुक्त क्रिया बनती है और अर्थ में क्या विशेषता आ जाती है ; इन सब बातों का विस्तार यहाँ न किया जाय गा ; क्योंकि ये कोई कठिन बातें नहीं हैं। हमें पुस्तक का कलेवर बढ़ाना अभीष्ट नहीं है। केवल जरूरी और विशेष काम की बातें ही दी जायँ गी।

इतना और समझ लीजिए कि 'था' आदि भी सहायक क्रियाएँ थीं, जो अब काल-आदि प्रकट करने के लिए विभक्ति की तरह प्रयुक्त होती हैं। 'था' आदि कृदन्त हैं ; इस लिए 'पुरुष'-भेद से इन के रूप बदलते नहीं हैं—स्त्री-पुं०-भेद अवश्य होता है—

१—राम ने रोटी बनायी थी

२—लड़की ने भात बनाया था

और—

१—**मैं** गया **था**

२—**तू** गया **था**

३—**वह** गया **था**

'पुरुष'-भेद से इसे मतलब नहीं। इसी तरह—

१—**मैं** गयी **थी**

२—**तू** गयी **थी**

३— वह गयी थी
४—वे गयी थीं

'गयी थी' 'गया था' 'गये थे' कर्ता के अनुसार लिङ्ग-वचन आदि हैं ; परन्तु मैं, तू, वह, या हम, तुम, वे—इन 'पुरुष'-भेदों से 'था' को कोई सरोकार नहीं। इस के विरुद्ध 'है' तिङन्त क्रिया 'पुरुष'-भेद से रूप बदलती है और स्त्रीलिङ्ग-पुलिङ्ग में समान रहती है--

लड़का गाता है—लड़के गाते हैं
लड़की गाती है—लड़कियाँ गाती हैं
मैं गाता हूं—मैं गाती हू

एक बात जरूरी छूटी जाती है ! विधि-आज्ञा-आदि में भी सहायक क्रिया पर ही भार रहता है। ऐसी क्रियाएँ, कृदन्त नहीं, तिङन्त होती हैं और स्त्रीलिङ्ग-पुल्लिङ्ग में समान रूप रख कर 'पुरुष'-भेद से भिन्नरूपता ग्रहण करती हैं—

बहन ने भाई से कहा—

भैया, पहले पुस्तकें लाओ (ले आओ)

भाई ने बहन से कहा—

बहन, पहले खीर लाओ (ले आओ)

और—

राम, कपड़े तो मेरे लाओ (ले आओ)

सर्वत्र 'तुम' कर्ता प्रच्छन्न है। उसी के अनुसार 'क्रिया' 'लाओ' है, स्त्रीलिङ्ग में भी और पुलिङ्ग में भी। मध्यम पुरुष—एक वचन ('तू') कर्ता हो, तो क्रिया 'ला' एक वचन होगी...

रमा, पुस्तकें तो ला (ले आ)

माधव, मेरी धोती ला (ले आ)

उत्तम पुरुष में—

रमा ने कहा—'मैं एक घंटे में ही कर चुकूं तो ?'

राम ने कहा—'मैं " " कर चुकूं तो ?'

बहुवचन—

लड़कियों ने कहा-हम काम कर चुकें, तब क्या करें ?

लड़कों ने कहा-हम काम कर कर चुकें, तब क्या करें ?

इस तरह सहायक क्रिया का प्रयोग समझा ! स्वतंत्र रूप से जैसा रूप होता है, वैसा ही सहायक अवस्था में भी प्रायः रहता है। 'प्रायः' इस लिए कि 'मैं ने सो लिया' आदि में 'लेना' आदि का भाववाच्य ही रूप होता है, जब कि स्वतंत्र उस का कर्मवाच्य भी होता है। परन्तु स्वतंत्र प्रयोग में भी, यदि कर्म उपस्थित या विवक्षित नहीं है, तो भी भाववाच्य ही हो गा; यह कह आये हैं।

मुख्य क्रिया का रूप

अब यह भी देख लें कि संयुक्त क्रिया में मुख्य क्रिया किस रूप में रहती है। 'कर चुकना' 'ले आना' 'उठ बैठना' 'जाग उठना' आदि में आप देखते हैं कि मुख्य क्रिया अपने धातु-रूप से स्थित है—'ले', 'उठ', 'जाग'। स्पष्ट हुआ कि आकस्मिकता या अविचारकारिता अथवा क्रिया को पूर्ण निष्पन्नता आदि प्रगट करने के लिए जब कोई सहायक क्रिया लग कर संयुक्त क्रिया बनती है, तब मुख्य क्रिया मूल या धातु-रूप से रहती है।

परन्तु जब क्रिया का सातत्य या जारी रहना आदि कहना हो, तो मुख्य क्रिया प्रायः भाववाचक प्रत्यय के साथ रहती है। भाववाचक कृदन्त प्रत्यय 'न' किंवा 'त' है। 'त' को 'य' हो जाता है और दोनो के अन्त में पुं-प्रत्यय 'आ' लग जाता है।

संस्कृत में--

पठनम्, पठितम्

भावप्रत्यय हैं; यद्यपि 'पठिता संहिता' आदि में 'त' स्पष्ट ही कर्मणि है। इसी तरह हिन्दी में--

पढ़ना, पढ़ा

दोनो भाववाचक हैं; यद्यपि पढ़ा, पढ़े, पढ़ी, यों कर्म-वाच्य भी हैं। इसी तरह-

करना, किया

आदि भी समझिए। यह सब कृदन्त प्रकरण में और भी अधिक स्पष्ट हो जाय गा। यहाँ इतने से मतलब कि मुख्य क्रिया का सातत्य या 'जारी रहना' आदि प्रकट करने के लिए जब कोई सहायक क्रिया लायी जाती है और संयुक्त क्रिया बनती है, तो मुख्य क्रिया अपने कृदन्त भाववाचक प्रत्यय के साथ रहती है—(सामान्ये पुल्लिङ्ग, एक वचन)—

राम मुझे देखते ही पढ़ने लगता है
सीता ,, ,, पढ़ने लगती है
लड़के ,, ,, पढ़ने लगते हैं

एक वचन 'पढ़ना' का 'पढ़ने' हो गया है। बतलाया गया था कि कोई प्रत्यय, विशेषण आदि सामने आये, तो 'आ' को 'ए' हो जाता है—कोई भी सम्बन्धी सामने आने पर। 'टाँगेवाला' में टाँगे बहुवचन नहीं है। 'टाँगा' का 'टाँगे' हो गया है। 'टाँगेवालों ने' यहाँ बहुवचन अवश्य है। बहुत से नासमझ 'परिष्कारक' 'टाँगेंवालों ने' ऐसा गलत कर देते हैं !

सो, 'पढ़ने लगना' में 'पढ़ना' के आ को ए हो गया है। इसी तरह—

रमा, तू तो काम किये जा
लड़को, तुम तो काम किये जाओ

लड़कियो, तुम तो रोटी **बनाये** जाओ

सर्वत्र किया भाववाचक का किये है—

राम काम किये जाता है

सीता काम किये जाती है

हम काम किये जाते हैं

तू काम किये जाता है

सर्वत्र किये है।

इस 'किये' को भूतकालिक प्रत्ययान्त न समझ लीजिए गा! भूतकाल का और वर्तमान 'जाता है' 'जाती है' आदि का मेल क्या? वर्तमान में भूतकाल का प्रत्यय खप कैसे सकता है? य (या) भूतकाल में भी (कर्मणि तथा भावे) होता है, और शुद्ध धात्वर्थ (भाव) में भी। 'भाव' शुद्ध धात्वर्थ होता है; पुरुष, वचन, तथा काल आदि से रहित; निर्मल जल की तरह। इस लिए वह सभी कालों, पुरुषों तथा वचनों में खप जाता है। जल दूध में सफेद और नील में नीला। यह नहीं कहा जा सकता है कि जल सफेद या नीला है, यद्यपि उन वस्तुओं के साथ वैसा है।

इसी तरह—

राम पढ़ने लगता है

राम काम किये ही जाता है

में 'पढ़ना' तथा 'किया' वर्तमान काल में हैं, तो---

राम पढ़ने लगा

राम काम करने लगा

में भूतकाल स्पष्ट है। इसी तरह अन्यत्र समझिए।

'किया करता हूँ' 'खाया करता हूँ' आदि की तरह 'पढ़ा करता हूँ' 'पढ़ा करती हूँ' आदि भी 'यान्त' कृदन्त (भाववाच्य) है ; अर्थात् 'पढ़ा' आदि के 'य' का लोप हो गया है। इसी तरह 'हुआ करता है' 'हुआ करते हैं' में 'यान्त' के 'य' का लोप है। 'न'- प्रत्ययान्त के 'आ' को 'ए' हो जाता है ; पर 'य'-प्रत्ययान्त 'आ' ज्यों का त्यों रहता है। हाँ, विशेष्य परे हो, तो यह भी रूप बदल कर 'ए' हो जाता है—

१—पढ़ते हुए लड़के को मत छेड़ो

२—पढ़ते हुए लड़कों को मत छेड़ो

परन्तु यहाँ 'हुआ' भावे नहीं, 'कर्तरि' है। प्रथम वाक्य में 'हुए' एकवचन है ; विशेष्य परे होने से 'ए' हो गया है। दूसरे उदाहरण में 'हुए' बहुवचन है, 'लड़कों' का विशेषण। स्त्रीलिंग में

'पढ़ती हुई लड़कियाँ अच्छी लगती हैं'

में 'हुई' स्त्रीलिंग है।

स्पष्ट मतलब यह निकला कि भावे 'य' (या) प्रत्ययान्त सदा पुल्लिङ्ग-एकवचन रहता है और जब वह कर्तृवाच्य (कर्तरि) या कर्मवाच्य (कर्मणि) होता है, तो विशेष्य के अनुसार बदलता है—

पिया हुआ दूध, किये हुए काम

लिया हुआ चित्र, भेजे गये दूत

सर्वत्र विशेष्य के अनुसार परिवर्तन है और 'य' कर्मणि है।

कर्तृवाच्य अकर्मक से होता है—

सोये हुए लड़के, सोयी हुई लड़कियाँ

गत्यर्थक सकर्मक से भी 'कर्तरि'—

काशी गये हुए लड़के से

शहर गयी हुई लड़की ने

इतना यह प्रसंगप्राप्त। प्रकृत यह कि भाववाच्य 'यान्त' रूप मुख्य क्रिया का ज्यों का त्यों रहता है, जब कि 'नान्त' में 'ए' के रूप में परिवर्तन होता है।

राम पढ़ने लगता है

में 'आ' को 'ए' क्यों ? और—

राम किया करता है

में 'किया' का 'किये' क्यों नहीं ? 'राम सोया करता है', 'सीता सोया करती है' में परिवर्तन क्यों नहीं ? यह भेद भ्रम को दूर रखने के लिए है। 'ना' प्रत्यय में भ्रम सम्भावित नहीं है ; पर 'किया' में सम्भावित है। कारण, 'कर्तरि' तथा 'कर्मणि' भी 'य' होता है, जो विशेषण के रूप में भी चलता है और स्वतन्त्र रूप से भूतकालिक क्रिया के रूप में भी। भाववाचक 'य' प्रत्यय का रूप भी 'किया' आदि होता है। भाववाच्य प्रत्यय का उस कर्तृवाच्य या कर्मवाच्य प्रत्यय से भ्रम न हो ; इस लिए सर्वत्र 'किया करती है', 'किया करते हैं' आदि रूप हैं।

तो भी 'जाना' आदि सहायक क्रिया की उपस्थिति 'आ' को 'ए' कर ही देती है—

राम काम किये ही जाता है
सीता योगक्रिया किये ही जाती है
मैं चार मास तक यह काम किये ही जाऊँ गा
हम आज्ञापालन किये ही जायँ गे

सर्वत्र भाववाचक 'क्रिया' का 'किये' रूप है—आगे सहायक क्रिया 'जाना' होने पर।

परन्तु क्रिया की निष्पत्ति में शीघ्रता या आतिशय्य प्रकट

करना हो, तो कर्तृवाच्य 'य' का प्रयोग मुख्य क्रिया में होता है ; अर्थात् तब वह कर्ता के अनुसार परिवर्तित होता है। ऐसी जगह 'जाना' सहायक क्रिया प्रायः लगती देखी जाती है—

वर्तमान काल—

१ अभी राम आया जाता है

२ अभी सीता आयी जाती है

३—अभी लड़के आये जाते हैं

४ – अभी लड़कियाँ आयी जाती हैं

वर्तमान के साथ 'आया' 'आयी' आदि भूतकाल की मुख्य क्रिया रखने से आने में शीघ्रता प्रकट होती है—आया ही हुआ समझिए !

भूतकाल में—

उस की गर्दन झुकी जाती थी

वह प्यास के मारे मरा जाता था

यहाँ भूतकाल में क्रिया की निष्पत्ति में शीघ्रता नहीं प्रकट करनी है—उस का आतिशय्य प्रकट करना है—गर्दन अत्यधिक झुक रही थी—झुकती ही जाती थी। 'मरा जाता था' में व्याकुलता का आधिक्य है। 'झुका' और 'मरा' में 'य' का लोप है। स्त्री प्रत्यय 'ई' कर के 'झुका' से 'झुकी'।

शीघ्रता या आतिशय्य नहीं ; बल्कि क्रिया का सातत्य प्रकट करना हो, तो फिर भूतकालिक 'य' नहीं, वर्तमानकालिक 'त'-प्रत्ययान्त मुख्य क्रिया रहती है और सहायक क्रिया यहाँ भी प्रायः 'जाना' ही रहती है। 'त' कृदन्त के बाद हिन्दी का 'आ' पुं-प्रत्यय होता ही है—

१—जैसे-जैसे वह दिन समीप आता जाता है, मन में उमंग बढ़ती जाती है

२—जैसे-जैसे अवधि समीप आती जाती थी, भरत की उत्सुकता बढ़ती जाती थी

३—अब कष्ट के क्षण बीतते जायगे और सुख के दिन समीप आते जायँ गे

ऊपर वर्तमान, भूत तथा भविष्यत् काल में 'तान्त' मुख्य क्रिया के उदाहरण दिये हैं, जो सब कर्तृवाच्य हैं।

आज्ञा आदि में भी—

१—लड़को, विद्या का अभ्यास करते जाओ और शरीर को भी पुष्ट करते जाओ

('जाओ' की जगह 'चलो' भी चलता है)

२—बहनो, अपने धर्म पर आगे बढ़ती चलो

यह कर्तृवाच्य 'त' संस्कृत के 'अत्' ('शतृ') की जगह है।

उस का प्रयोग भी इसी तरह कर्तृवाच्य तीनो कालों में तथा विधि आदि से संवलित होता है—

१—बालकाः पठन्तः गच्छन्ति (बालक पढ़ते जाते हैं)

२—बालिकाः पठन्त्यः गच्छन्ति (लड़कियाँ पढ़ती जाती हैं)

३—बालिका पठन्ती गच्छति (लड़की पढ़ती जाती है)

अर्थात् पढ़ना जारी है और चलना तो है ही। मध्यम तथा उत्तम पुरुष में भी—

तू पढ़ता आता है—मैं पढ़ता आता हूं

तुम पढ़ते आते हो—हम पढ़ते आते हैं

परन्तु इन संयुक्त क्रियाओं में अन्तिम प्रधान हैं। 'आता' आदि स्वार्थ से हैं। यदि स्वार्थ छोड़ दिया है, तब सहायक मात्र है और मुख्य पहली क्रिया है ; जैसे—

लड़की पढ़ती ही जाती है

लड़के ऊधम मचाते ही जाते हैं

यहाँ 'जाना' सहायक भर है और 'स्वार्थ' उस का छूट गया है।

संस्कृत में 'अन' तथा 'तुम्' भाववाचक प्रत्यय ऐसी क्रियाओं के बनाने में लगते हैं --

पठने प्रवृत्तः आसीत्—वह पढ़ने (में) लगा था

पठने सा प्रवृत्ता अस्ति   वह पढ़ने (में) लगी है

पठने त्वम् प्रवृत्तः असि   तू पढ़ने (में) लगा है

कोष्ठक में 'में' दे कर हिन्दी में जो अर्थ प्रकट किया है, उस से पृथक् अर्थ देने के लिए ही 'तुम्' का प्रयोग होता है और वह भी भाववाचक है—

सः पठितुं प्रवृत्तः—वह पढ़ने लगा

सा पठितुं प्रवृत्ता—वह पढ़ने लगी

त्वं पठितुं प्रवृत्तः—तू पढ़ने लगा

'प्रवृत्तः' के आगे सहायक क्रिया 'अस्ति' आदि लगा कर सभी कालों में ऐसे प्रयोग होते हैं। पर हमें तो हिन्दी से मतलब !

देखना, सुनना आदि मुख्य क्रियाओं के साथ 'देना' सहायक क्रिया दे कर शक्ति-अशक्ति आदि प्रकट करते हैं, तब मुख्य क्रिया की धातु 'आई' प्रत्यय के साथ आती है। यह 'आई' भी भाववाचक प्रत्यय है ; अर्थात् पुरुष या वचन के भेद से बदलता नहीं है—

१—तुम्हें सुनाई नहीं देता ?

२—हमें सब दृश्य दिखाई पड़ते हैं

३—सब को वह ध्वनि सुनाई पड़ी थी

सर्वत्र 'आई' समरूप है।

इस तरह संक्षेप से यह संयुक्त क्रिया का विवरण हुआ। 'खा सकता है' 'जा सकता है' इत्यादि साधारण प्रयोग हैं। संस्कृत में भी ऐसी जगह संयुक्त प्रयोग ही होते हैं---

भोक्तुं शक्नोति

गन्तुं शक्नोति

सारांश यह कि कम-ज्यादा सभी भाषाओं में संयुक्त क्रियाएँ चलती हैं और उन का अपना-अपना मार्ग होता है। हिन्दी का भी अपना मार्ग है और संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग भी यहाँ बहुत हैं; परन्तु सरलता भी अत्यधिक है। यदि व्याकरण के चक्कर में न पड़ कर वैसे ही कथा-कहानी आदि पढ़ते रहें, तो अपने-आप सब प्रयोग आ जायँ गे। व्याकरण तो भाषा का गठन समझने के लिए है कि इस की बनावट कहाँ कैसी है। सो, यह एक अलग विज्ञान है। सूर्य चलता है कि पृथ्वी, यह न जानता हुआ भी इन का सही उपयोग करता है।

सप्तम अध्याय

'प्रेरणा' के रूप

संस्कृत में मूल धातु का आद्य स्वर प्रेरणा में दीर्घ हो जाता है और हिन्दी में इस के विरुद्ध, मूल धातु का आद्य स्वर यदि दीर्घ हो, तो प्रेरणा में ह्रस्व हो जाता है —

संस्कृत---'पठति' का प्रेरणा-रूप 'पाठयति' है।

हिन्दी में---'पढ़ता है' का प्रेरणा-रूप 'पढ़ाता है' होता है।

संस्कृत में 'ए' 'ओ' 'ऐ' और 'औ' दीर्घ स्वर माने गये हैं। हिन्दी में भी यही स्वीकृत है। 'ए' तथा 'ओ' संयुक्त स्वर हैं, जो 'अ-इ' तथा 'अ-उ' से मिल कर बने हैं। अर्थात् 'ए' और

'ओ' स्वर द्विमात्रिक हैं। इन का ह्रस्वात्मक रूप संस्कृत में, और हिन्दी में भी, 'इ' तथा 'उ' होता है। सो, प्रेरणा में—

'देखता है' का रूप 'दिखाता है' हो गा और—

ओढ़ता है का उढ़ाता है

कई धातुओं के प्रेरणा-रूपों में, बीच में, 'ल' का आगम हो जाता है—

कपड़ा सीता है—कपड़े सिलाता है

रोटी खाता है—रोटी खिलाता है

देखा जाता है कि प्रायः एकस्वर सी या सीं, तथा खा आदि धातुओं में ही प्रेरणा 'ल' का आगम करती है। हिन्दी की किसी-किसी बोली में 'ल' के बदले 'व' भी आता है—

'कपड़ा सिंवावति है'—'रोटी खवावति है'

ल तथा व दोनो अन्तःस्थ हैं—बीच में यत्र-तत्र आ जाते हैं। 'य' भी अन्तःस्थ है, जो संस्कृत प्रेरणा में आ कूदता है—

पठति—पाठयति, अवगच्छति—अवगमयति

एकस्वर खा, पी, सीं, आदि धातुओं में 'ल' (और कभी-कभी व) का आगम इस लिए होता है कि प्रेरणा बनाने में सुगमता रहे। अन्यथा, काम ही न चलता। 'व' का भी आगम—

बोता है—बुवाता है

आदि में स्पष्ट है। यहाँ 'ल' का आगम क्यों नहीं हुआ ? इस लिए कि भ्रम का प्रवेश न हो। 'बोलना' की प्रेरणा 'बुलाना' होती है—

राम बोलता है—राम बुलाता है

तब 'बुलाता है' भ्रामक हो जाता। बोना तथा बोलना के प्रेरणा-रूप भिन्न हों ; इस लिए बोना का बुवाना हुआ। और बोलना की प्रेरणा बुलाना न मान कर स्वतंत्र धातु-रूप मानें, तो भी वही बात। मतलब यह है कि बुलाना करने से भ्रम होता ; इस लिए बोना की प्रेरणा बुवाना हुई।

और सब जगह :—

धोता है—धुलाता है
सोता है—सुलाता है
रोता है—रुलाता है
पीता है—पिलाता है

आद्य स्वर ह्रस्व और 'ल' का आगम तथा दीर्घ-रूपता। 'ल' के आगम की भरमार होने से कभी-कभी अनेक-स्वर धातुओं में भी इस के दर्शन होते हैं—

सीखता है—सिखाता है, सिखलाता है
बताता है—बतलाता है, इत्यादि

परन्तु जोतता है का जुतवाता है रूप हो गा, जुतलाता है नहीं।

सभी सकर्मक

प्रेरणा में कोई भी क्रिया अकर्मक नहीं रहती। सब 'सकर्मक' हो जाती हैं, और बहुत-सी 'द्विकर्मक' भी! मूल अकर्मक क्रिया प्रेरणा में आ कर सकर्मक हो जाती है और वहाँ की सकर्मक यहाँ 'द्विकर्मक' हो जाती है। बात यह है कि मूल क्रिया का 'कर्ता' यहाँ (प्रेरणा में) कर्म का बाना पहन लेता है—कर्म की सी चाल चलने लगता है। इसी लिए इस (असली कर्ता) को यहाँ 'कर्म' किंवा 'गौण कर्म' कहते हैं। इस के बिना काम चल नहीं सकता; क्योंकि क्रिया का असली कर्ता यही है; परन्तु 'प्रेरक' को जब 'कर्ता' का रूप मिला, तब मुख्य कर्ता को 'कर्म' की जगह रखना ही हो गा। तो भी, 'कर्ता' रहे गा कर्ता ही, वह 'कर्म' न बन जाय गा। नकली या 'गौण' कर्म भले ही कह लो; कहते ही हैं! इसी लिए साधारण दशा की अकर्मक क्रिया प्रेरणा में सकर्मक कही जाती है—

कृष्ण सोता है

और—

यशोदा कृष्ण को सुलाती है

सोने (शयन क्रिया) का कर्ता कृष्ण, जो प्रेरणा में आ कर

कर्म के रूप में है। कर्म में जिस तरह 'को' विभक्ति लगती है, जहाँ वह रखा जाता है और जिस तरह से, सो सब क्रिया (शयन) के असली कर्ता कृष्ण में देख सकते हैं—यशोदा कृष्ण को सुलाती है। इसी लिए कृष्ण कर्म, गौण कर्म। वैसे कर्ता कृष्ण ही हैं—सुलाना होने पर भी। यशोदा के झुलाने या थपकी लगाने पर सोयेंगे तो कृष्ण ही न? तब क्रिया के असली कर्ता कृष्ण ही हुए न? प्रयोग के कारण कर्ता को कर्म कह देते हैं, जैसे किसी नाटक के प्रयोग (अभिनय) में रामदत्त को दुष्यन्त कह देते हैं—भूमिका ग्रहण करने के कारण।

अस्तु, मतलब यह कि प्रेरणा में कोई क्रिया अकर्मक नहीं रहती है। मूल क्रिया सकर्मक हो, तो प्रेरणा में द्विकर्मक हो जाती है। एक उस का असली कर्म और एक यह गौण कर्म। ऐसी द्विकर्मक क्रियाओं में, प्रेरणा में, विभक्तियाँ (को, से आदि) गौण कर्म में लगती हैं और वाच्य या क्रिया-रूप असली कर्म के अनुसार चलते हैं। दोनो का बँटवारा समझिए—

यशोदा ने कृष्ण को लड्डू खिलाया

यशोदा ने कृष्ण को पूड़ी खिलायी

यशोदा ने कृष्ण को पेड़े खिलाये

सर्वत्र वाच्य असली कर्म के अनुसार हैं। यदि क्रिया द्विकर्मक न हो, साधारण अकर्मक क्रिया का सकर्मक रूप प्रेरणा में हो, तो फिर क्रिया का वाच्य भूतकाल में कर्मवाच्य या भाव-वाच्य हो गा और कर्मवाच्य रूप इसी गौण कर्म के अनुसार हो गा। असली कर्म कोई है ही नहीं, तब गौण ही सामने रहे गा—

पेड़ गिरता है—लड़का उठता है

पेड़ गिरा—लड़का उठा

भूतकाल की प्रेरणा-स्थिति—

मजदूरों ने पेड़ गिराया

मा ने डंडा उठाया

भाववाच्य तो सदा पुल्लिङ्ग एकवचन—

मा ने बच्चे को गोद में उठाया

माताओं ने बच्चों को गोद में उठाया

बहन ने बहन को गोद में उठाया

और—

शत्रु ने सन्त को नीचे गिराया

दुष्ट ने बच्चों को रुलाया

दुष्टा ने बच्चों को रुलाया

यह झलक मिलती है कि प्राणिवाचक कर्म होने पर उस के साथ 'को' का प्रयोग होता है और तब (भूतकाल में) भाव-वाच्य क्रिया प्रायः होती है। वर्तमान तथा भविष्यत् आदि में तो क्रिया कर्तृवाच्य ही रहती है, सकर्मक भी ; इस लिए वहाँ साधारणतः कर्म के अनुसार क्रिया के परिवर्तन की कोई बात ही नहीं—

यशोदा कृष्ण को सुलाती है
मोहन मुन्नी को सुलाता है

और कर्म में 'को' लगे बिना—

लड़की पेड़ गिराती है
लड़का दीवार गिराता है
लड़के चटाइयाँ गिराते हैं

इसी तरह—

सुलाये गी, गिराये गी, गिरायें गे ,

कर्ता के अनुसार (रूप चलें गे)। आज्ञा तथा विधि आदि में भी कर्म के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं होता है ; क्योंकि 'पढ़ाओ' और 'गिराये' आदि तिङन्त क्रियाएँ कर्तृवाच्य ही हैं।

इस तरह सब साफ है। जहाँ 'से' का प्रयोग होता है कर्म में, वहाँ भी गौण कर्म ही इस (विभक्ति) के साथ रहता है—

यशोदा कृष्ण से गौएँ चराती (या चरवाती) है

भूतकाल में कर्मवाच्य होने पर वाच्य मुख्य कर्म के अनुसार हो गा—

यशोदा ने कृष्ण से गौ चरवायी
यशोदा ने कृष्ण से गौएँ चरवायीं
यशोदा ने कृष्ण से बछड़े चरवाये

सरांश यह कि विभक्ति गौण कर्म में लगती है और क्रिया का वाच्य या रूप-भेद मुख्य कर्म के अनुसार रहता है। बात इतनी स्पष्ट है कि आगे कुछ लिखने को मन नहीं करता है। वैसे कहने-सुनने को बहुत-कुछ है ; पर काम चलने-चलाने के लिए इतना पर्य्याप्त है।

अष्टम अध्याय

'कर्म-कर्तृ' प्रकरण

भाषा में कुछ लाक्षणिक प्रयोग भी होते हैं। बात संक्षेप में कहने की प्रवृत्ति इस का मूल कारण है। कुछ प्रयोग-विच्छित्ति का आकर्षण भी कारण है। मुखिया या बड़े आदमी की नकल सब करते हैं। जहाँ तक क्रिया का सम्बन्ध है, सब से मुख्य स्थान कर्ता को प्राप्त है। कभी-कभी, अवसर मिलते ही कर्म, करण तथा अधिकरण आदि कारक कर्ता की जगह आ बैठते हैं। जरा भी कर्ता की अनुपस्थिति हुई कि अन्य कोई कारक उस की जगह आ बैठे गा! राजगद्दी खाली कैसे रहे? थोड़ी देर के लिए कोई भी नजदीकी (पारिषद्-मुसाहिब) उसे सँभाल सकता है और तब, उतनी देर के लिए, वह भी राजा

कहला लेता है। इसी तरह कर्ता की अनुपस्थिति में कर्म आदि कारक उस की जगह आ बैठते हैं और क्रिया-प्रजा का पूर्ण अनुशासन इसी तरह करते हैं। कर्ता की ही तरह क्रिया को अपने पीछे चलाते हैं।

१—कपड़े सिल रहे हैं
२—तलवार शत्रुओं के सिर काट रही है
३—शत्रु कट रहे हैं
४—यह बटलोही तीन सेर चावल पकाती है

ऊपर वाक्यों में 'कपड़े' 'तलवार' 'शत्रु' तथा 'बटलोही' अपनी क्रियाओं के कर्ता की तरह प्रयुक्त हैं; यद्यपि वे कर्ता नहीं; प्रत्युत कर्म, करण, कर्म तथा अधिकरण कारक हैं।

कपड़े स्वतः नहीं सिल सकते; इस लिए कर्ता नहीं। 'स्वतंत्रः कर्ता'—क्रिया-निष्पादन में जो स्वतंत्र हो, वह कर्ता होता है। जो कपड़ा सीने का काम करे, वह कर्ता। परन्तु कर्ता की अविवक्षा में वैसे कर्मकर्तृ प्रयोग कर दिये जाते हैं। किसी ने कहा—ओहो, आज तो कपड़े सिल रहे हैं! सीनेवाला कौन, यह न कह कर 'कपड़े सिल रहे हैं' कह दिया। अब 'सीना' की

यह 'सिलना' कर्म-कर्तृ क्रिया कपड़े (कर्म) के अनुसार चलेगी, जो कर्ता की हैसियत में है—

पाजामा सिल रहा है
पाजामे सिल रहे हैं
धोती सिल रही है

और---

आग के बिना
रोटियाँ नहीं पकतीं
साग नहीं बनता
चने नहीं भुनते

पकाना, बनाना तथा भूनना मूल क्रियाएँ हैं, सकर्मक। उन के कर्म यहाँ हैं रोटियाँ, साग तथा चने। ये वस्तुतः (असली) कर्ता नहीं हैं ; क्योंकि

किसी के पकाये बिना रोटियाँ पक नहीं सकतीं ;
किसी के बनाये बिना साग बन नहीं सकता ;
किसी के भूने बिना चने भुन नहीं सकते।

सो, पकानेवाला, बनानेवाला और भूननेवाला, ये सब 'कर्ता' हैं, उन क्रियाओं के। उन का उल्लेख नहीं हुआ है। ऐसी

स्थिति में उन क्रियाओं के 'कर्म' कारक ही 'कर्ता' की तरह प्रयुक्त हुए हैं। उन्हीं के अनुसार क्रिया के लिङ्ग-वचन आदि हैं। इसी को 'कर्म-कर्तृ' प्रक्रिया कहते हैं।

सो, मूल सकर्मक क्रिया 'कर्म-कर्तृ' प्रकरण में उसी तरह नकली तौर पर 'अकर्मक' हो जाती है, जैसे साधारण अकर्मक क्रिया प्रेरणा में 'सकर्मक' हो जाती है। प्रेरणा में कोई भी क्रिया अकर्मक न मिलेगी और यहाँ 'कर्म-कर्तृ' प्रक्रिया में) कोई भी क्रिया सकर्मक न मिलेगी। कारण, कर्म तो कर्ता बन जाता है न? तब क्रिया अकर्मक होगी ही!

साधारण क्रिया का आद्य स्वर जैसे प्रेरणा में ह्रस्व हो जाता है, उसी तरह 'कर्मकर्तृ' में भी; परन्तु प्रेरणा में अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाता है, जब कि 'कर्म-कर्तृ' में उलटे ह्रस्व हो जाता है—

१—'दर्जी कपड़े सीता है' साधारण प्रयोग है

२—राम दर्जी से कपड़ा सिलाता है—प्रेरणा

३—दर्जी के यहाँ कपड़ा सिलता है—'कर्म-कर्तृ'

तीनों वाक्यों में साधारण, प्रेरणा तथा 'कर्म-कर्तृ' के क्रिया-रूप स्पष्ट हैं। 'ता' को न देख कर धात्वंश देखिए।

परन्तु उगना, बढ़ना, सूखना आदि को आप कहीं उगाना, बढ़ाना, सुखाना आदि का 'कर्मकर्तृ' रूप न समझ लीजिएगा। उगना, बढ़ना, आदि स्वतः मूल क्रियाएँ हैं, जिन के प्रेरणा-रूप हैं उगाना, बढ़ाना, आदि। कारण, इन क्रियाओं के स्वतंत्र कर्ता आप देखते हैं—

पेड़ उगते हैं, सूखते हैं, बढ़ते हैं

और—

लड़का उठता है, बैठता है, सोता है

कर्त्ता स्वतः प्रवृत्त तथा समर्थ है क्रिया में। परन्तु जैसे पेड़ उगता-बढ़ता है और जैसे लड़का उठता-बैठता है, उसी तरह कपड़े सिल नहीं सकते, जब तक कोई सिये न और न रोटी बन सकती है, जब तक कोई बनाये न। सो, उगना-उठना आदि मूल अकर्मक क्रियाएँ हैं और पकना, सिलना, बनना आदि 'कर्मकर्तृ' रूप हैं - पकाना, सिलाना, बनाना आदि सकर्मक क्रियाओं के।

जब करण या अधिकरण आदि का प्रयोग कर्ता की तरह होता है, तब 'कर्म' उपस्थित रहता है, यदि क्रिया सकर्मक हो—

तलवार शत्रुओं को काटती है

में तलवार करण है, जिस का कर्ता की तरह प्रयोग हुआ

है। तलवार खुद ही शत्रु-शिर नहीं काट सकती, जब तक कोई काटने वाला न हो। परन्तु काटने वाले का (कर्ता का) नाम न लेकर तलवार का ही प्रयोग कर्ता की तरह कर दिया है, उस (तलवार) की विशेषता प्रकट करने के लिए। कर्म शत्रु-शिर हैं। तो, भूतकाल में कर्मवाच्य क्रिया होगी, इस 'करण-कर्तृ' प्रकरण में—

तलवार ने शत्रु का शिर काटा
तलवार ने शत्रुओं के शिर काटे

इसी तरह अधिकरण-कर्तृ में-

बटलोही ने दो सेर चावल पकाये
बटलोही ने दो सेर खीर पकायी
बटलोही ने दो सेर भात पकाया

सो, केवल कर्म ही नहीं, करण तथा अधिकरण आदि भी कर्ता के रूप में आ जाते हैं ; परन्तु क्रिया तथा कर्ता के अत्यधिक समीप कर्म है और उसी के कारण क्रिया में परिवर्तन (भूतकाल में) होता है, इस लिए इस प्रकरण का नाम कर्म-कर्तृ है, जिस में करण-अधिकरण का भी ग्रहण है।

ये सब बातें आप के लिए विस्तार की अपेक्षा नहीं रखती हैं। साधारण चर्चा तो करनी ही थी।

छोटे छात्र कर्मकर्तृ समझने में गड़बड़ाते हैं और व्याकरण की पुस्तकें उन्हें और भी झमेले में डाल देती हैं। व्याकरण के ग्रन्थों में कर्मकर्तृ के क्रिया-रूप को साधारण अकर्मक क्रिया समझ कर यों झमेला बढ़ाया गया है—

मूल	प्रेरणा	प्रेरणा की प्रेरणा
कटना	काटना	कटाना या कटवाना

सो, तेल का तेल निकालने-निकलवाने से तो छात्र चक्कर में पड़ेंगे ही। हिन्दी-व्याकरण बहुत सरल है; पर व्याकरणों ने उसे न जाने क्या बना दिया है! आप ऐसे 'व्याकरणों' से बचें।

नवम अध्याय

नामधातु

अन्य सभी भाषाओं को तरह हिन्दी में भी नाम या संज्ञा से धातु बनाने को चाल है। क्रिया से संज्ञा तो बनती ही है, जिसे आप कृदन्त संज्ञा कहते हैं; पर संज्ञा (नाम) से धातु भी बनती है, जो विविध क्रिया-रूप बनाने में समर्थ है। ऐसी क्रियाएँ भी (सकर्मक-अकर्मक) दोनो तरह की होती हैं। वे उसी तरह कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य रूप से त्रिधा चलती हैं। भाषा की यह त्रिपथगा आप को सर्वत्र मिलेगी। नामधातु से बनी क्रियाएँ सभी कालों में, पुरुषों में, वचनों में तथा विधि-आज्ञा आदि में प्रकट होती हैं।

'लहर' एक संज्ञा है, जातिवाचक। गम्भीर जलाशय में एक के बाद दूसरी लहर आती हुई कितनी भली मालूम देती है। लहरों की इसी गति-विशेष को लेकर 'लहराना' क्रिया बनी, 'लहर' नामधातु बनी। लहरों की तरह जब कोई चीज हिलोरें लेती है, तो कहते हैं कि यह चीज कैसी लहरा रही है—

लहराती है मुक्त गगन में भारत-राष्ट्रपताका

तो, लहराना अकर्मक क्रिया हुई।

कोई चीज (वस्त्र आदि) हवा में उड़ कर फर-फर की आवाज करती है। इस 'फर-फर' अनुकरणात्मक शब्द से—'फहराना' नामधातु—

झंडा फहरा रहा है

'फरफर' से 'फहर' हो गया है। इन अकर्मक क्रियाओं के रूप प्रेरणा में सकर्मक हो ही जाएँ गे :—

नेता जी ने स्वतन्त्र भारत में झंडा फहराया

फहरे गा, फहरायँ गे, फहराया करें गे।.. आदि सभी तरह के प्रयोग हों गे।

इसी तरह 'हाथ' एक संज्ञा है, जातिवाचक। अधिकार में करने को 'हस्तगत करना' कहते हैं—लाक्षणिक प्रयोग। इसी आधार पर 'हाथ' संज्ञा से 'हथियाना' क्रिया बनी, सकर्मक—

अंग्रेजों ने चालाकी से भारतीय सत्ता हथिया ली थी

'हथियायी' स्त्रीलिंग।

विशेषण से भी नामधातु बनती है। 'चिकना' से 'चिकनाना'–

अब तुम बातें न चिकनाओ

दीवार जरा चिकना तो दो

अनुकरणात्मक शब्दों से तो बहुत अधिक नामधातुओं का सृजन होता है--हिनहिनाना, खड़खड़ाना, भड़भड़ाना, सरसराना, खटखटाना, मिमियाना, भिनभिनाना, खनखनाना आदि।

कभी-कभी किसी भाषा में व्यक्तिवाचक संज्ञा से भी नामधातु बन जाती है; परन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध से ही। आयरलैंड जब ब्रिटिश जबड़े से छूटने के लिए फड़फड़ा रहा था, तो वहाँ मि० बायकाट नाम के एक नेता रंगमंच पर आये। उन्होंने यह आन्दोलन चलाया कि अंग्रेजी माल मत खरीदो और अंग्रेजी राज्य को किसी भी तरह का कोई सहयोग मत दो। उन के इस आन्दोलन को 'बायकाट मूवमेंट' कहने लगे और आगे चल कर उस क्रिया का नाम ही 'बायकाट' पड़ गया! अंग्रेजी में ही नहीं, अन्य भाषाओं में भी 'बायकाट' की पहुंच हुई। सन् १९२१ में भारतवर्ष में जब वैसा आन्दोलन चला, तो यहाँ भी अंग्रेजी माल का 'बायकाट' चला। यद्यपि 'बायकाट' विशेषण रूप

से ही चला, हिन्दी में 'बायकटाना' आदि नहीं हुआ, क्योंकि हिन्दी की प्रकृति ने 'बहिष्कार' को भी 'बहिष्कराना' नहीं बनाया है—'बहिष्कार करता है' आदि रूप ही होता है। 'बायकाट करना' एक क्रिया ही है। हिन्दी अपनी संस्कृत भाषा के अन्य भी क्रिया-जन्य विशेषण ले कर इसी रूप में नामधातु बनाती है—

हम स्वीकार करते हैं
तुम अङ्गीकार करो

इत्यादि में 'स्वीकार करना' तथा 'अंगीकार करना' क्रियाएँ हैं, केवल 'करना' नहीं। 'करना' तो सहायक भर है।

इस का मतलब यह हुआ कि हिन्दी अपनी ही संज्ञाओं से 'हथियाना' आदि नामधातु बनाती है। संस्कृत के भी (तत्सम) शब्दों से इस तरह नामधातु न बना कर 'करना' आदि सहायक क्रियाएँ लगा कर बनाती है। 'स्वीकार करता हूँ' की जगह 'स्वीकारता हूँ' न होगा; परन्तु व्यापारी लोग हुण्डी सकारते जरूर हैं—सकारते हैं, स्वीकार करते हैं।

इन नामधातुओं से कृदन्त आदि के सब रूप वैसे ही बनते-चलते हैं; जैसे अन्य धातुओं के।

इतना तो बहुत स्पष्ट है कि हिन्दी किसी दूसरी भाषा की संज्ञा आदि से नामधातु नहीं बनाती है ; जब तक कि उसे तद्भव रूप न दे ले। 'हाथ' से 'हथियाना' है ; पर 'हस्त' से 'हस्तियाना' नहीं। मिट्टी या माटी से मटियाना है ; पर 'मृत्ती' या 'मृत्तिका' से 'मृत्ति-काना' नहीं।

दशम अध्याय

पूर्वकालिक तथा क्रियार्थक क्रिया

पूर्वकालिक क्रिया तथा क्रियार्थक क्रिया का विषय बहुत कुछ 'संयुक्त क्रिया' के प्रकरण में आ चुका है। तो भी, यह एक पृथक् और स्वतंत्र चीज है; इस लिए इस पर पृथक् विचार भी जरूरी है।

पूर्वकालिक क्रिया

संस्कृत में 'त्वा' (क्त्वा) लगा कर पूर्वकालिक क्रिया बनाते हैं; परन्तु उपसर्ग लगने पर 'त्वा' झट 'य' किंवा 'त्य' के रूप में बदल जाता है; प्रकृति में भी कुछ परिवर्तन हो जाता है—

कृ से 'कृत्वा,' गम् से 'गत्वा,' शी से 'शयित्वा'

परन्तु हिन्दी में सरलता है। 'कर' लगा कर पूर्वकालिक क्रिया बनती है और प्रकृति में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता—

जा कर, सो कर, उठ कर, बैठ कर, पढ़ कर

मूल धातु के आगे 'कर' लगा दिया और बस! 'कर' से पूर्वकालिक क्रिया बनाने पर आगे प्रत्यय का 'कर' आ कर पुनरुक्ति से 'कर कर' कुछ सुष्ठु उच्चारण नहीं रहता। इस लिए प्रत्यय के 'कर' को 'के' प्रायः हो जाता है—

ऐसा कर के तुम क्या लाभ उठाओगे?

अन्यत्र 'कर' ही रहता है। उपसर्ग हिन्दी-क्रियाओं में उस तरह लगते ही नहीं और कभी कोई लगे भी, तो 'कर' अपना रूप नहीं बदलता है। सो, यहाँ पूर्वकालिक क्रिया बहुत सरल है—सदा 'कर' का प्रयोग और प्रकृति ज्यों की त्यों। कभी-कभी 'कर' का लोप अवश्य हो जाता है—

पढ़-लिख तुम ने क्या किया?

'पढ़-लिख' के आगे 'कर' का लोप है। मतलब है—'पढ़-लिख कर तुमने क्या किया'।

किसी भी पुरुष, वचन, काल, लिंग या वाच्य की क्रिया हो, पूर्वकालिक क्रिया में कोई परिवर्तन न हो गा। वह सदा 'कर' के साथ रहे गी।

क्रियार्थक क्रिया

क्रियार्थक क्रिया संस्कृत में प्रायः 'तुम्' लगा कर बनाते हैं और प्रकृति में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते हैं—

कृ-कर्तुम्, गम्—गन्तुम्, जि—जेतुम्

परन्तु हिन्दी की प्रकृति में ऐसा कोई कहीं परिवर्तन नहीं होता है। क्रिया के सामान्य रूप (पढ़ना, खाना, पीना आदि) को क्रियार्थक क्रिया के लिए काम में लाया जाता है।

'आ' को 'ए' हो ही जाता है, जब वैसा कोई सम्बद्ध शब्द परे हो। सो—

१—राम काशी **पढ़ने** जाता है

२—गोविन्द चित्र-विद्या **सीखने** जाय गा

३—यशोदा कृष्ण को **सुलाने** जा रही थी

कभी-कभी बीच में 'के लिए' भी आ जाता है:—

१—राम **पढ़ने के लिए** उद्योग करता है

२—गोविन्द रोटी **बनाने के लिए** आग लाता है

परन्तु :—

राम **जाना** चाहता है

गोविन्द **पढ़ना** चाहता है

यहाँ 'आ' को 'ए' नहीं हुआ है। इस का मतलब यह कि

क्रियार्थक क्रिया यहाँ है ही नहीं। 'जाने के लिए चाहना' मतलब नहीं है ; प्रत्युत 'जाना' और 'पढ़ना' कर्म हैं--'चाहना' सकर्मक क्रिया के, जिन का सामानाधिकरण्य से प्रयोग है और यों ये साधारण 'संयुक्त क्रियाएँ' हैं। 'क्रियार्थक क्रिया' भी एक तरह की संयुक्त क्रिया ही है ; पर सभी संयुक्त क्रियाएँ 'क्रियार्थक क्रियाएँ' तो नहीं हो सकती हैं न ! 'कांग्रेसी' भी मनुष्य ही हैं ; पर सभी मनुष्य तो 'कांग्रेसी' नहीं हो सकते न ? कुछ अन्तर है। वही अन्तर स्वरूप-भेद से प्रकट है।

इसी तरह—

तुम्हें पढ़ना चाहिए

हमें गाना चाहिए

आदि में 'पढ़ना'-'गाना' क्रियार्थक क्रियाएँ नहीं हैं। इसी लिए इन के 'आ' को 'ए' नहीं हुआ है। 'पढ़ने' या 'गाने' के लिए 'चाहिए' नहीं है।

और कोई बात इस विषय में कहने को वैसी है नहीं। आगे 'कृदन्त' प्रकरण समझने की चीज है। उसे कुछ अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। उस से 'क्रिया' के सभी प्रकरण सामने स्वतः थिरकने लगें गे।

एकादश अध्याय

कृदन्त प्रकरण

यह बहुत आवश्यक प्रकरण है। हिन्दी की अधिकांश क्रियाएँ कृदन्त हैं; यह कई बार हम कह चुके हैं। पिछले प्रकरणों में कृदन्त की बहुत सी बातें छुट-पुट आ भी चुकी हैं; परन्तु बहुत कुछ कहने को शेष भी है। सब आवश्यक विषय एक जगह संक्षेप से देख लेना जरूरी है। अत्यन्त आवश्यक बात पर ही विचार हो गा।

'त' प्रत्यय (वर्तमान में—'कर्तरि')

वर्तमान काल में ('कर्तरि') 'त' प्रत्यय सभी धातुओं से हिन्दी में होता है और सहायक (तिङन्त) क्रिया 'है' लगा कर

सभी पुरुषों तथा वचनों में इस का प्रयोग होता है। 'त' प्रत्यय धातु के सामने आते ही उस में संज्ञा-विभक्ति 'आ' तुरन्त लग जाती है; जैसे संस्कृत में विसर्ग; (नपुंसक लिंग में) 'अम्' किंवा 'म्'। धातु में कोई परिवर्तन नहीं होता, 'त' प्रत्यय लगने पर।

इसी ('त' प्रत्यय) से वर्तमान काल की सब क्रियाएँ बनती हैं, जो कर्ता के अनुसार वचन तथा स्त्रीपुंभेद रखती हैं—

जाता है, जाते हैं—जाती है, जाती हैं

'जाता' 'जाते' तथा 'जाती' से 'पुरुष'-भेद प्रकट नहीं होता। 'है' उसे स्पष्ट करती है—

जाता है, जाता हूँ, जाते हो

'त' (हेतुहेतुमद्) भूतकाल में

एक 'त' का उपयोग 'हेतुहेतुमद् भूत' में भी होता है; पर उस समय 'है' का प्रयोग नहीं होता है। यह भी 'कर्तरि' प्रत्यय है—कर्ता के अनुसार गति।—'है' साथ न रहने से भूतकाल—

वर्षा होती, तो नाज होता

मतलब यह कि न वर्षा हुई, न नाज हुआ! नाज इस लिए नहीं हुआ कि वर्षा ही नहीं हुई! यह 'त' प्रत्यय वर्तमानकालिक 'त' प्रत्यय से भिन्न है, जो हेतुहेतुमद् भूत काल में प्रयुक्त होता है। वर्तमानकालिक 'त' प्रत्यय भूतकाल में कैसे प्रयुक्त हो सकता

है ? भाषा में कोई भ्रम भी नहीं होता है—'त' समान रूप होने पर भी कोई वर्तमान काल नहीं समझता--'वर्षा होती, तो नाज होता' को सब भूतकाल की ही क्रिया असन्दिग्ध रूप से समझते हैं।

'हेतुहेतुमद् भूत' का 'त' भी अकर्मक-सकर्मक सभी धातुओं से उसी तरह कर्तृवाच्य होता है—कर्ता के अनुसार लिङ्ग-वचन बदलता है। 'पुरुष' की स्पष्टता के लिए 'कर्ता' को स्पष्टतः 'तू-तुम' 'मैं-हम' आदि की उपस्थिति अनिवार्य होती है; क्योंकि सहायक क्रिया ('है') यहाँ रहती नहीं है। वह तो वर्तमान काल में ही रहती है।

गा, गे, गी

भविष्यत् काल में विभक्ति की तरह 'गा' 'गे' 'गी' का प्रयोग होता है, जो स्पष्ट ही कृदन्त क्रिया 'ग' के रूप हैं। 'ग' में पुंव्यंजक विभक्ति ('आ') लग कर 'गा' और बहुवचन में 'गे' तथा स्त्री-लिंग में 'गी' रूप होते हैं। यदि ऐसा न होता और 'गा' स्वतंत्र विभक्ति होती, तो इस के रूप इस तरह न बदलते। ने, में, को, से, आदि के रूप कहाँ बदलते हैं? पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग और एकवचन-बहुवचन में समान! परन्तु 'गा' में यह बात नहीं है। यद्यपि कृदन्त 'गा' क्रिया के स्वतन्त्र रूप से प्रयोग

हिन्दी में लुप्त हो गये हैं और इसी लिए हम यह भी बताने में असमर्थ हैं कि किस क्रिया का किस प्रत्यय से यह 'गा' रूप बना ; परन्तु इस की बनावट से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह किसी धातु का कृदन्त रूप है, जो कि सकर्मक-अकर्मक सभी तरह की धातुओं से कर्तरि (कर्तृवाच्य) है। कर्ता के अनुसार 'गा' के वचन-लिङ्ग बदलते हैं। यह 'गा' (सहायक क्रिया) 'गतः' से या 'गया' से नहीं है ; क्योंकि 'जाना' अर्थ यहाँ जरा भी नहीं झलकता ! केवल 'ग' देख कर इसे गम् या गत के कुल-वंश का बता देना ऐसा ही है ; जैसे मिसरी को एक प्रकार का नमक बता देना। हम अटकलपच्चू बात न करें गे। कभी कुछ ध्यान में आ जाय गा, तो और बात है। और 'गतः' तो भूतकाल है, जिस से 'गया' बना है। भविष्यत् की 'गा' से इस का मेल भी क्या ?

सो, यह 'गा' कर्तृवाच्य कृदन्त सहायक क्रिया है। वस्तुतः हिन्दी ने अपनी क्रियाओं के लिए स्वतंत्र विभक्तियाँ प्रायः ली ही नहीं हैं। है, गा, था इन सहायक क्रियाओं से ही काम चलाया है और ये तीनो ही कर्तृवाच्य हैं। परन्तु 'है' में इतना अन्तर है कि यह कृदन्त नहीं, तिङन्त है और इसी लिए पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग में रूप-भेद नहीं करती ; पर पुरुष-भेद से स्वरूप-परिवर्तन करती है। था, और गा कृदन्त सहायक

क्रियाएँ हैं और भूत तथा भविष्यत् में काम आती हैं। कृदन्त हैं, इस लिए पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग में रूप-भेद होता है ; पर पुरुष-भेद का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'है' का तथा 'था' का स्वतंत्र प्रयोग भी होता है, जब कि गा केवल सहायक के रूप में दृष्टचर है। इसी लिए 'गा' विभक्ति समझ ली गयी है !

'य' भूतकाल में

हिन्दी में अकर्मक धातुओं से कर्तरि 'य' प्रत्यय होता है और इस के आगे पुं-प्रत्यय तुरन्त लग जाता है, जो स्त्रीलिङ्ग में ई बन जाता है। संस्कृत में अकर्मक धातुओं से ऐसी जगह त (क्त) प्रत्यय होता है, कर्तृवाच्य ही। संस्कृत के 'त' को ही हिन्दी ने 'य' का रूप दे दिया है, जिस से कि वर्तमानकालिक त-प्रत्ययान्त का भ्रम न हो। 'त' का 'य' हो जाना भाषा-विकास के नियम तथा प्रवाह के अनुसार ठीक ही है। भाषा में 'त' को 'य' होता ही रहता है। दोनो का स्थान एक ही है। सो संस्कृत के 'त' को हिन्दी ने 'य' बना लिया है। अकर्मक से कर्तृवाच्य—

बालकः गतः, बालिका गताः, बालकाः गताः

लड़का गया, लड़की गयी, लड़के गये

त को य न होता, तो—

सोता है, खाता है, रोता है

आदि में भ्रम होता, आसन्न भूतकाल में। परन्तु त को 'य' कर देने पर—

सोया है, खाया है, रोया है

यों स्पष्ट प्रतिपत्ति है।

आप कहेंगे कि—

राम ने लंका जीती

अशोक ने कलिंग जीता

यहाँ भूतकाल में 'त' को 'य' क्यों नहीं हुआ? यहाँ तो संस्कृत का 'त' ज्यों का त्यों भूतकाल में है न? भ्रम यहाँ क्यों नहीं होता? संस्कृत का पूरा अनुकरण है। संस्कृत में सकर्मक क्रिया से 'त' प्रत्यय भूतकाल में कर्म-वाच्य होता है और हिन्दी में भी—

रामेण लंका जिता

(राम ने लंका जीती)

अशोकेन कलिङ्गः जितः

(अशोक ने कलिङ्ग जीता)

यों कर्मवाच्य 'त' प्रत्यय भूतकाल में है। 'त' को 'य' तो नहीं हुआ न? तब उस नियम का क्या हुआ?

शङ्का हो सकती है; 'जितः'—'जिता' देख कर। परन्तु ध्यान

में रखने की बात है कि संस्कृत में धातु 'जि' है और हिन्दी में तकारान्त 'जीत'। सो, वर्तमानकालिक कर्तृवाच्य 'त' प्रत्यय होने पर :—

राम लङ्का जीतता है

यों रूप हो गया। भूतकाल में—

राम ने लङ्का जीती

कर्मवाच्य क्रिया ठीक, भूतकाल में; परन्तु प्रत्यय 'त' नहीं, 'य' हुआ है, जिस का लोप है।

जिन हिन्दी-धातुओं में स्वर एक से अधिक हैं, उन के भूतकालिक 'य' प्रत्यय का लोप हो जाता है; अकर्मक-सकर्मक सभी का। कारण, ऐसी धातुओं में 'य' की श्रुति कर्ण-कटु तथा अटपटी हो जाती है। यद्यपि खड़ी बोली के पश्चिमी अञ्चल में अब भी 'भई, लड़का पढ्या तो भोत है' यों 'य' का लोप किये बिना बोलते हैं; परन्तु राष्ट्रभाषा ने उसे घिस कर पढ़ा बना लिया है।

पढ्या तो है

को हम 'पढ़ा तो है' ऐसा 'य'-लोप कर के ही सर्वत्र लिखते-बोलते हैं।

'पढ़ना' सकर्मक क्रिया का ऊपर अकर्मक प्रयोग है; अतः 'य' कर्तृवाच्य। सकर्मक में 'य' कर्मवाच्य देखिए—

वेद म्हारा पढ्या है

वेद हमारा पढ़ा है

इसी तरह 'देखा' को वहाँ 'देख्या' बोलते हैं। राष्ट्रभाषा ने 'य' उड़ा दिया ; उस का लोप हो गया—

हम ने पढ़ा, लिखा, देखा, सुना आदि।

परन्तु जिन धातुओं में एक ही स्वर है, उनमें 'य' सदा रहता है, कर्तृवाच्य भी, कर्मवाच्य भी और भाववाच्य भी—

कर्तृवाच्य—

राम रोया, सोया

रमा रोयी, सोयी

लड़के रोये, सोये

कर्मवाच्य—

राम ने जल पिया

गोविन्द ने फल खाये

भाववाच्य—

मा ने सो लिया

परतु 'लाज' 'शरम' आदि संज्ञाओं से बनी धातुओं में, अनेक स्वर होने पर भी, 'य' बना रहता है—

राम लजाया—मोहन शरमाया

प्रेरणा में भी, अनेक स्वर होने पर भी, भूतकाल का 'य' अवस्थित रहता है, लुप्त नहीं होता है।

कुछ उदाहरण—

यशोदा ने कृष्ण को गोद में **उठाया**

नन्द ने कृष्ण को गोद में **बैठाया**

यदि यहाँ भी 'य' का लोप हो जाता, तो साधारण क्रिया के भूतकालिक रूपों में—उठा-बैठा आदि में—एकरूपता आ जाती, जो अभीष्ट नहीं। दूसरे 'उठाया' 'बैठाया' किंवा 'उठ्या' 'बैठ्या' की तरह 'उठाया-बैठाया' में श्रवण-कटुता भी नहीं है। ह्रस्व 'अ' से परे 'य' श्रवणकटु लगता है, पर गुरुतर 'आ' के आगे वह श्रुतिमधुर हो जाता है—

'उठ्या—उठया', 'पढ्या—पढया'

देखिए आर—

उठाया, पढ़ाया, बैठाया

आदि भी देखिए।

खैर, हमें इतने से मतलब कि 'देखा' 'जीता' आदि अनेक स्वरवाली धातु की क्रियाओं में भूतकालिक 'य' लुप्त है। सो 'जीता' 'जीती' आदि 'जीत' धातुओं की भूतकालिक क्रियाओं में प्रत्यय का 'य' लुप्त है। 'जीता' में जो 'ता' है, सो तो प्रकृति का (धातु का) ही है। प्रत्यय का 'त' तो उस के अनन्तर लगता है—

जीतता है, जीतते हैं, जीतती है

'जीता' में 'जीत' धातु से जब 'य' प्रत्यय हुआ, तो उस साथ ही 'आ' पुं-विभक्ति आ गयी—धातु के अन्त्य स्वर व लोप—

जीत्या, देख्या, पढ्या

अन्यत्र—

जीत्यो, देख्यो, पढ्यो

परन्तु कर्णकटु होने के कारण 'जीत्या' आदि से 'य' का लो होने पर भी वह पुंप्रत्यय ज्यों का त्यों बना रहा और धातु व स्वरहीन अन्तिम व्यंजन उसी में जा मिला—'देखा,' 'पढ़ आदि। स्त्रीलिङ्ग में 'देखी-सुनी'।

जब सकर्मक क्रिया से भाववाच्य 'य' प्रत्यय होता है, सदा पुल्लिङ्ग-एकवचन रहता है और 'य' की उपस्थिति या लो पूर्वोक्त प्रकार से ही होता है—

१—मैं ने सब सह लिया

२—मा ने सब सह लिया

३—अबलाओं ने सब सह लिया

और—

१—हम ने तुम को देखा

२—मा ने बच्चे को देखा

३—बच्चों ने मा को देखा

प्रेरणा में—

१—मा ने बच्चों को जगाया

२—बच्चों ने मा को जगाया

३—तुम ने हमें जगाया

४—हम ने तुम्हें जगाया

सर्वत्र 'य' के वे ही नियम हैं। 'य' के लोप का कारण सर्वत्र उच्चारण-विरसता है। इसी लिए कभी एकस्वर धातु भी 'य' का लोप कर देती है—'हुआ'। 'हुया' अच्छा नहीं लगता। इस तरह कृदन्त 'य' अकर्मक से तथा गत्यर्थक सकर्मक से कर्तृवाच्य और शेष सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य या भाववाच्य होता है। इस का बहुत कुछ परिचय पीछे भी दिया जा चुका है; इस लिए इतना यहाँ बहुत है। अकर्मक से भाववाच्य भी 'य' होता है—'अभी हम ने नहाया है'।

'य' भाववाच्य

ऊपर बताया गया है कि भूतकालिक 'य' भावावाच्य भी होता है। उस भूतकालिक 'य' से यह भिन्न 'य' भाववाच्य है। यह किसी काल-विशेष से अपना किंचित् भी सम्बन्ध नहीं रखता है। यह 'य' भी संस्कृत भाववाच्य 'त' का ही परिवर्तित रूप है। 'गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः' आदि में 'गतम्' भाववाच्य 'त'

है, 'गमनम्'-अर्थ में। काल-विशेष से इस का कोई गँठबन्धन नहीं—

१—सूर्यस्य गतम् दृष्टम्, गमनं दृष्टम्

(सूर्य का जाना देखा)

२—सूर्यस्य गतं द्रक्ष्यामि, गमनं द्रक्ष्यामि

(सूर्य का जाना देखूँगा)

३—सूर्यस्य गतं पश्यामि, गमनं पश्यामि

(सूर्य का जाना देखता हूँ)

सर्वत्र 'गतम्' है—'गमनम्' के अर्थ में। यद्यपि सर्वत्र 'गमनम्' के स्थान में 'गतम्' का प्रयोग प्रवाह-प्राप्त नहीं है; परन्तु व्याकरण ने इसे किसी काल आदि से नहीं बाँध रखा है।

यही भाववाच्य 'त' हिन्दी में 'य' के रूप में परिवर्तित हो कर अपना रूप सदा पुल्लिङ्ग एकवचन रखता है तथा सभी कालों, पुरुषों और वचनों की संयुक्त-क्रियाओं में समान रूप से रहता है। विशेष काल, पुरुष, वचन, लिङ्ग आदि का बोध सहायक क्रियाओं से होता है। संयुक्त क्रिया में, जब क्रिया का सातत्य आदि प्रकट करना होता है, तो मुख्य क्रिया इसी भाववाच्य 'य' प्रत्यय के साथ आती है। संस्कृत में ऐसी जगह प्रायः 'यङन्त' या 'यङ्लुङन्त' प्रक्रियाओं से काम लिया जाता है। उदाहरण—

१—मैं पढ़ने जाया करता हूं
२—तू पढ़ने जाया करती है
३—लड़के पढ़ने जाया करते हैं
४—तू लड़कों को पढ़ाया करत
५—रमा बच्चों को सुलाया करती है
६—बच्चे मा को जागाया करते हैं
७—मा बच्चों को जगाया करती है

जब अनेक सहायक क्रियाएँ होती हैं तो 'य' प्रत्यय मुख्य क्रिया के साथ न लग कर उस के आगे की सहायक क्रिया में लगता है और मुख्य क्रिया प्रत्यय-रहित (मूल धातु के रूप में) रहती है--

१—मैं दस बजे सो जाया करती हूं
२—रमा दस बजे सो जाया करती है
३—लड़के दस बजे सो जाया करते हैं

इस तरह यह भाववाच्य 'य' प्रत्यय है, जो सर्वत्र चलता है। इसे बहुत से वैय्याकरणों ने भूतकाल की चीज समझ कर बड़ा गड़बड़-घोटाला किया है और लिख दिया है कि 'ऐसी संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया भूतकाल में रहती है !' इन बेचारों की समझ में यह भी न आया कि

१—राम तुम्हारे घर जाया करे गा

२—गोविन्द तुम्हारे यहाँ जाया करता है

इन भविष्यत् तथा वर्तमान काल की क्रियाओं के साथ भूतकाल का क्या मेल! 'गया' में और 'जाया' में जो भेद है, वह भी न समझा! भूतकाल में, 'य' परे होने पर, 'जा' को 'ग' आदेश हो जाता है; परन्तु अन्यत्र नहीं। साधारण (काल आदि के बन्धन से रहित) भाववाच्य 'य' की उपस्थिति में 'जा' को 'ग' नहीं होता है। इतनी स्पष्ट चीज में भ्रम! इसी से वैसे व्याकरण बने, जिन्होंने उलझन पैदा कर दी!

पूर्वोक्त कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य भूतकालिक 'य' प्रत्यय की उपस्थिति तथा लोप के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया था, वही सब इस सामान्य भाववाच्य 'य' के बारे में भी समझिए—

(क) १—राम काम **किया** करता है

२—लड़की कपड़े **सिया** करती है

३—लड़के दूध **पिया** करते हैं

(ख) १—राम मुझे देखा करता है

२—राम मुझे देखा करता था

३—राम मुझे देखा करे गा

४—रमा खेल किया करती है

५—लड़कियाँ कपड़े सिया करती हैं

६—बच्चों को देख कर माताएँ जिया करती हैं

७—वह बातें सुना करता है

८—तू बातें सुना करता है

९—हम बातें सुना करते हैं

प्रेरणा में सर्वत्र 'य' रहता है—

१—तुम मुझे भगाया करते हो

२—मैं लड़के पढ़ाया करता हूं

३—तू मजदूरों से काम कराया करता है

४—मा बच्चे को कहानी सुनाया करती है

५—बहन भाई को कहानी सुनाया करती थी

६—बहन बहन को कहानी सुनाया करे गी

७—तू बच्चे को कहानी सुनाया कर।

'त' भाववाच्य

कर्तृवाच्य 'त' प्रत्यय का उल्लेख हो चुका है। एक 'त' प्रत्यय भाववाच्य भी है, जिस का प्रयोग सभी कालों, पुरुषों, और वचनों में समान-रूप से होता है। स्त्रीलिङ्ग-पुंलिङ्ग में भी कोई अन्तर नहीं होता। सदा एकरस रहता है। 'त' के आगे पुंविभक्ति और सर्वत्र उसे 'ए' होता है :-

१—आती है उर्दू जबाँ आते-आते

'न' भाववाच्य

हिन्दी में अकमक-सकर्मक सभी तरह की धातुओं से 'न' प्रत्य भाववाच्य होता है, जो संस्कृत के 'पठनम्' आदि से लिया गया है। परन्तु हिन्दी में नपुंसक-लिंग है ही नहीं; इस लिए इस 'न' में भी वही पुंसंज्ञा-विभक्ति लगती है और सामान्यतः सभी कालों, पुरुषों, वचनों के साथ (स्त्रीलिंग में भी) सामान्य प्रयोग एक-रूप चलता है -

अकर्मक—

उठना, बैठना, जागना, सोना, लजाना, आदि

सकर्मक—

पढ़ना, लिखना, खाना, पीना, पहनना आदि

प्रेरणात्मक—

उठाना, बैठाना, जगाना, सुलाना, लजवाना

तथा

पढ़ाना, लिखाना, खिलाना, पिलाना, पहनाना आदि

नामधातु के—

खटखटाना, बड़बड़ाना, हथियाना, मटियाना, प्रभृति ।

प्रयोग देखिए—

राम पढ़ना नहीं चाहता; लड़के पढ़ना नहीं चाहते; लड़की पढ़ना नहीं चाहती

कर्म के साथ —

राम पुस्तक पढ़ना चाहता है, लड़की विद्या पढ़ना चाहती है, बच्चे सब विद्याएँ पढ़ना चाहते हैं

भूतकाल में—

हम काशी जाना चाहते थे; तू कसीदा काढ़ना अच्छा समझती थी

भविष्यत्—

हम विद्या पढ़ना पसन्द करेंगे; तू हँसना चाहेगा। **सभी कारकों में इस [भाववाचक] संज्ञा के रूप चलते हैं**—

पढ़ने से; पढ़ने में; पढ़ने पर; पढ़ने का। **रहेगा एकवचन ही**—'लड़कों से हमें सुख मिले गा।'

'न' भाववाच्य तथा कर्मवाच्य

विधि तथा क्रिया की अनिवार्यता आदि प्रकट करने में हिन्दी में 'न' 'कर्मवाच्य' तथा 'भाववाच्य' होता है। धातु में 'न' लगने पर वही पुंप्रत्यय। भाववाच्य सदा पुलिंग-एकवचन रहेगा। कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार परिवर्तन हो गा।

भाववाच्य—

हमें सबेरे उठना हो गा, मुन्नीको जल्दी जागना हो गा, लड़कों को ठहरना हो गा, तुमको रुकना हो गा

सकर्मक के अकर्मक अवस्था में भाववाच्य प्रयोग—

१—राम को चौदह वर्ष तक पढ़ना हो गा

२—सीता को पहले पढ़ना हो गा

३—लड़कों को तो जरूर ही पढ़ना हो गा

कर्मवाच्य-

१—राम को यही **कपड़े पहनने हों गे**

२—सीता को **भोजन बनाना सीखना ही हो गा**

३—मुझे राम से अभी **बातें करनी हैं**

सकर्मक अवस्था में क्रिया, ऐसी दशा में, कर्मवाच्य तो रहती ही है, भाववाच्य भी देखी जाती है। हम कह चुके हैं कि हिन्दी में सकर्मक क्रियाएँ (कर्म उपस्थित होने पर भी) कभी-कभी भाववाच्य भी होती हैं-

१—लड़कों को अभी इतनी विद्याएँ सीखना है

२—तुम को एक बड़ी परीक्षा पास करना है

३—हमें पुस्तक पढ़ना है

इन्हें यों कर्मवाच्य तो कर ही सकते हैं—

१—लड़कों को अभी इतनी विद्याएँ सीखनी हैं

२—हमें पुस्तक पढ़नी है

३—तुम को एक बड़ी परीक्षा पास करनी है

'न' आज्ञार्थक, भाववाच्य तथा कर्मवाच्य

एक 'न' प्रत्यय आज्ञाथक भी है, जो सकर्मक-अकर्मक धातुओं से 'भावे' तथा 'कर्मणि' होता है—

१—राम को सबेरे उठना हो गा

२—लड़कियों को जल्दी उठना हो गा

३—हम को आज कुछ जल्दी सोना है

४—विपत्ति पड़ने पर भी घबराना नहीं

सब अकर्मक क्रियाएँ हैं। तीसरे उदाहरण से स्पष्ट है कि इस से अवश्यकर्तव्यता आदि भी प्रकट होती है।

सकर्मकों से कर्मवाच्य—

१—लड़कियों को कपड़े सीने हैं

२—हमें पुस्तक पढ़नी है

३—लड़के को चित्र-विद्या सीखनी है

इन में कर्तव्यता है। 'सीने हों गे' 'सीखनी हो गी' आदि में दबाव या आज्ञा आदि है।

'चाहिए' लगा देने से विधि बन जाती है—

१—राम को सबेरे उठना चाहिए

२—लड़कियों को बात-बात पर रोना न चाहिए

सकर्मक—

१—लड़कियों को कपड़े सीने चाहिए

२—लड़के को चित्र-विद्या सीखनी चाहिए

स्पष्ट है, ऐसी आज्ञा या विधि की क्रियाओं का कर्ता 'को' विभक्ति के साथ आता है और किसी-किसी सर्वनाम में उस ('को') के प्रतिनिधि 'हि' का 'इ' रूप भी—

१—उसे करना है

२—किसे पढ़ना है ?

'किसे पढ़ना है' में प्रश्न है। इस का मतलब यह हुआ कि संस्कृत के 'लोट्' तथा 'लिङ्' लकारों के क्रिया-रूप जिन अर्थों को प्रकट करते हैं, उन्हीं (विधि, आज्ञा, प्रश्न, सम्भावना आदि) को यह 'न' प्रत्यय हिन्दी में विविध सहायक क्रियारूपों के सहयोग से प्रकट करता है।

भविष्यत् से सम्बद्ध 'न'

जब 'न'-प्रत्ययान्त के साथ 'चाहिए' आए, तो विधि; 'होना' सहायक क्रिया के साथ जबर्दस्ती या अनिवार्यता आदि की प्रतीति होती है। परन्तु जब 'न'-प्रत्ययान्त (भाववाच्य कृदन्त)

क्रिया अकेले आए, फिर भविष्यत् काल से संवलित आज्ञा या सीख की प्रतीति होती है—सदा पुल्लिङ्ग एकवचन—

१—राम, अच्छी पुस्तकें जरूर पढ़ना

२—सीता, हिन्दी पढ़ना जारी ही रखना

३—बच्चो, कभी भी दुष्टों की संगति न करना

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ऐसी क्रियाएँ तभी आती हैं जब किसी को सम्बोधित कर के कुछ वैसा कहा जाता है। और ऐसी दशा में 'कर्ता' 'मध्यम पुरुष' (तू-तुम) ही होता है, भले ही वह उच्चरित न हो। अर्थात्, 'प्रथम पुरुष' या 'उत्तम पुरुष' के साथ ऐसी (भाववाच्य कृदन्त) क्रियाएँ नहीं आतीं ; प्रत्युत तिङन्त क्रियाएँ आती हैं—

१—राम अच्छी पुस्तकें जरूर पढ़ता रहे

२—सीता हिन्दी पढ़ना जारी ही रखे

३—देखते रहना, बच्चे दुष्टों की संगति न करें

तीसरे उदाहरण में 'देखते रहना' क्रिया का कर्ता मध्यम पुरुष ('तुम') है और इसीलिए वैसी भाववाच्य 'न'-प्रत्ययान्त क्रिया है। 'बच्चे' जिस क्रिया के 'कर्ता' हैं, वह तिङन्त ही है—(न) 'करें'।

उत्तम पुरुष में भी—

१—नारायण, हमें बुद्धि दो कि हम अच्छे काम करते रहें

२—मैं पढ़ता ही रहूँ ?

'उत्तम पुरुष' में आज्ञा तो सम्भावित ही नहीं है। अपने आप को आज्ञा क्या ? हाँ, आशंसा तथा प्रश्न आदि हो सकते हैं, जो ऊपर दोनो उदाहरणों में हैं। सार यह कि यह 'न' केवल मध्यम पुरुष 'कर्ता' के साथ रहता है।

द्वादश अध्याय

सन्धि-प्रकरण

संस्कृत की प्रायः सभी सन्धियाँ हिन्दी में ज्यों की त्यों गृहीत हैं और चलती हैं। 'प्रायः' इस लिए कि कहीं कोई संस्कृत सन्धि हिन्दी स्वीकार नहीं करती। उदाहरणार्थ संस्कृत व्याकरण के अनुसार—

पुनर्+रचना=पुनारचना

अन्तर्+राष्ट्रिय=अन्ताराष्ट्रिय

ऐसे प्रयोग होते हैं। हिन्दी ने एक 'राष्ट्रीय' शब्द ज्यों का त्यों (तत्सम) लेकर भ्रम बढ़ाना उचित नहीं समझा, जब कि अन्य सभी शब्द केन्द्रीय, राजकीय, नारकीय आदि 'ईय' से ही हैं। सो, हिन्दी ने 'राष्ट्रिय' को 'राष्ट्रीय' कर के ग्रहण किया है और उपर्युक्त सन्धि भी स्वीकार नहीं की है।

हिन्दी में—

'पुनः रचना'

'अन्तर्-राष्ट्रीय'

यों लिखा जाय गा। 'पुनारचना' की अपेक्षा तो 'पुनर्रचना' भी हिन्दी में ठीक; यद्यपि संस्कृत में यह ठीक न हो गा। 'अन्तरराष्ट्रीय' आदि का 'र' यदि सस्वर लिखा जाय, तो कोई झगड़ा ही नहीं। ठीक भी वही है। 'अन्तर' का अर्थ समास में 'अन्य' होता है—'देश, देशान्तर' 'पुस्तक, पुस्तकान्तर'। इसी तरह 'राष्ट्रीय' और 'अन्तर-राष्ट्रीय'। 'अन्तर' का पूर्व-प्रयोग भर हुआ और उस से अर्थ में विशेषता भी आ गयी। 'अन्ता-राष्ट्रीय' तो कोई समझ न पाये गा, जब तक संस्कृत का वह विशेष सन्धि-नियम न जान ले। हिन्दी ने ऐसे विशेष सन्धि-नियम संस्कृत के न ले कर सामान्य सब ले लिये हैं।

समास में (संस्कृत में) सन्धि की अनिवार्य्यता है; परन्तु हिन्दी ने यह अनिवार्य्यता स्वीकार नहीं की है। साथ-साथ अनुभव करने को 'सह-अनुभूति' कहें गे और हमदर्दी को 'सहानुभूति'। काव्य के सहृदय पाठक में 'सह-अनुभूति' चाहिए। कवि ने जिस चीज का जैसा अनुभव किया है, जिस पात्र के प्रति उस की जैसी सह-अनुभूति है, पाठक में भी वैसी ही यदि न हुई, तो समझो कि उस ने कविता नहीं समझी। इस 'सह-अनुभूति'

को 'सहानुभूति' (सन्धि कर के) न कर देंगे। पाठक कवि के प्रति सहानुभूति रखे? क्यों? आलोचक में "सह-अनुभूति' का अभाव हुआ, तो वह आलोचना क्या करेगा? परन्तु आलोचक कवि के प्रति 'सहानुभूति' रखे क्या? तब आलोचना क्या करे गा? कसौटी क्या सोने के प्रति या उस की उत्पादक भूमि के प्रति या उस के परिष्कारक के प्रति सहानुभूति रखती है? सहानुभूति रखने पर भी क्या वह कसौटी ही रहे गी? तब समालोचन में कवि के प्रति 'सहानुभूति' कैसी! हाँ, 'सह-अनुभूति' तो चाहिए ही।

सो, हिन्दी का अपना मार्ग है, अपनी परम्परा है। परन्तु साधारणतः सन्धि-समास आदि में संस्कृत का ही अनुगमन है। इसी लिए सन्धियों के वे सब नियम आदि यहाँ न दिये जायँ गे।

हाँ, हिन्दी की अपनी सन्धियाँ भी हैं और इन के नियम भी हैं, जो संस्कृत पर ही प्रायः आधारित हैं। किन्तु हिन्दी-व्याकरणों में हिन्दी की इन अपनी सन्धियों की कोई चर्चा ही नहीं है। लोग समझे ही नहीं हैं। संस्कृत सन्धियों के ही सब नियम विस्तार से लिख दिये गये हैं, और बहुत से तो ऐसे, जिन को केवल हिन्दी-वाले समझ ही नहीं सकते; जैसे "चे+अन=चयन" "धौ+अन=धावन" आदि।

हिन्दी वाले 'चयन' 'अनुधावन' आदि समझते हैं ; पर 'चे' और 'अन' तथा 'धौ' और 'अन' वे क्या जानें ? मतलब भी क्या ? पर सब भर दिया गया है ! और, हिन्दी की इन 'अपनी' सन्धियों का कहीं कोई पता ही नहीं।

'ह' की सन्धि

१—संख्यावाचक सर्वनाम या अव्यय आदि के बकारान्त रूपों के सामने यदि 'ही' अव्यय आए, तो 'ब' के 'अ' का लोप हो जाता है और तब ब्+ह्=भ् होकर अगले स्वर (ई) से मिल जाता है—

सब+ही=सभी

जब+ही=जभी

कब+ही=कभी

तब+ही=तभी

२—हकारान्त सर्वनाम (यह, वह) से परे 'ही' आये, तो सर्वनाम के 'ह' का लोप हो जाता है—

यह+ही=यही

वह+ही=वही

दो 'ह' एक जगह कर्णकटुता पैदा करते हैं। इसी लिए एक उड़ जाता है। दो महाप्राण सिंह एक जगह कैसे रहें !

३—सकारान्त सर्वनामों से परे 'ही' आये, तो 'स' के स्वर का तथा 'ही' के व्यञ्जन का लोप हो जाता है और 'स्' आगे 'ई' में मिल जाता है—दग्धाश्वरथन्यायेन, तोकूँ और न मोकूँ ठौर—

उस+ही=उसी तरह

इस+ही=इसी जगह

किस+ही=किसी ने

परन्तु 'ऐसी' 'कैसी' आदि में इस सन्धि का अस्तित्व नहीं है ; यहाँ तो 'ऐसा' का स्त्रीलिङ्ग 'ऐसी' और 'कैसा' का 'कैसी' है।

'य्' का लोप

संस्कृत में 'हर यिह' 'हर इह' आदि में य् का लोप विकल्प से होता है। हिन्दी में भी

गये—गए, आये—आए, रुपये—रुपए

गयी—गई, आयी—आई, भायी—भाई ('भाया' का)

यों रूप होते हैं। अर्थात् ऐसे स्थलों में य् का लोप विकल्प से होता है।

परन्तु

गया, रुपया, मनभाया, समाया

आदि में लोप कतई नहीं होता। इस का कारण क्या है?

क्या यह अव्यवस्था है ? जी नहीं, हिन्दी में कहीं अव्यवस्था है ही नहीं। सर्वत्र व्यवस्था है, वैज्ञानिक पद्धति है। कोई समझ न पाए, तो बात दूसरी है। बात कुछ विस्तार से कहनी हो गी।

बात यह है कि हिन्दी में यथाश्रुत लिखने की विशेषता है, जो संस्कृत से आयी है। 'य' का तथा 'इ-ई' का समान स्थान है, एक ही उच्चारण-स्थान है 'तालु'। स्वर प्रबल होता है, व्यञ्जन आश्रित होने के कारण निर्बल। एक ही जगह यदि किसी प्रबल के साथ निर्बल आ बैठे, तो अपनी सत्ता खो बैठे गा—इतना दब जाय गा कि समझो कुछ है ही नहीं! इसी लिए 'य' 'ई' में मिल कर चुप हो जाता है, मानो मर गया हो। 'गयी आयी उठायी' आदि में य प्रमाणप्राप्त है; क्योंकि ये रूप हैं गया, आया, उठाया आदि के स्त्रीलिङ्ग। सो, य-युक्त रूप सही हैं परन्तु इन में य् पूर्ण रूप से तो क्या, किञ्चित् भी श्रुत नहीं है। आप किसी ऐसे व्यक्ति को बोल कर गयी आदि शब्द लिखाएँ, जो यथाश्रुत लिखने में दक्ष हो। वह गयी को गई और आयी को आई लिखे गा। कारण, य् श्रुत है ही नहीं। बस, लोप का यही कारण है और यही कारण संस्कृत के 'हर इह' आदि में य्-लोप का है। 'विष्ण इह' तो फिर नकल पर लोप प्राप्त करने लगे; क्योंकि 'विष्णविह' में व् पूर्ण श्रत है। व् का और इ का

उच्चारण-स्थान भिन्न-भिन्न है। इसी लिए 'इ' के साथ 'व्' दबता नहीं है; जैसे हिन्दी में 'गया', 'आया' आदि में 'आ' के साथ 'य्' नहीं दबता। 'आयो', 'गयो' आदि में 'ओ' के साथ भी 'य्' स्पष्ट श्रुत है। परन्तु 'ई' के साथ वह दब जाता है। जब श्रुत नहीं, तो लुप्त हुआ! सो, 'आई गई' आदि रूप य्-लोप से हैं। 'य्' प्रमाण-प्राप्त है; इस लिए आयी, गयी आदि भी।

इसी तरह 'गये-गए' और 'आये-आए' भी वैकल्पिक लोप से हैं। 'ए' में भी 'य्' स्पष्ट श्रुत नहीं। किसी को इमला बोल कर देख लीजिए—आठवीं-नवीं श्रेणी के छात्र को। उस से कह दो कि जो सुनो, वही लिखो। 'ए' के साथ 'य्' के लोप में भी वही कारण—स्पष्ट श्रुति का अभाव। और, स्पष्ट श्रुति के अभाव में भी वही कारण—एक-स्थानीय 'इ' या 'ई' के साथ दब जाना। 'ए' संयुक्त स्वर है। 'अ' तथा 'इ' से मिल कर यह बना है। सो, 'इ' की सत्ता 'ए' में 'य्' को दिखायी देती है। इसी लिए वह सत्ताहीन हो जाता है। सो, लोपयुक्त—गए, आए, लजाए, भिगोए आदि प्रयोग होते हैं। य्-युक्त प्रमाण-प्राप्त हैं ही—गये, आये, लजाये, भिगोये। द्विरूप शब्द हिन्दी में इने-गिने ही हैं। चल रहे हैं। कोई गड़बड़ भी नहीं डालते। पहले लोग भ्रम में थे कि 'गयी' ठीक है, या 'गई'! जब समझाया गया कि दोनो ठीक हैं, तब कुछ सज्जन कहते हैं कि एक ही तरह के प्रयोग रहने

चाहिए। अब हुक्म कौन दे कि ऐसे प्रयोग रहें, ऐसे न रहें? जो अधिक चलें गे, रह जायँ गे और जो कम गृहीत हों गे, लुप्त हो जायँ गे। दोनो चलें तो भी कोई गड़बड़ी नहीं। अन्य भाषाओं में तो शतशः द्विरूप शब्द हैं; जब कि हिन्दी में केवल एक जगह ऐसी है—'गयी-गई, गये-गए'।

हमारा काम तो केवल यह समझाना है कि य् का कहीं लोप होता है।

'इ' की सन्धियाँ

यहाँ 'इ' से हमारा मतलब केवल उस 'इ' से है, जो राष्ट्र-भाषा हिन्दी (खड़ी बोली) में एकमात्र (तिङन्त) क्रिया-विभक्ति है। पहले कहा जा चुका है कि 'पढ़े' आदि क्रियाएँ तिङन्त हैं, जो स्त्रीलिंग-पुल्लिग में समान रहती हैं। अवश्य ही 'पठेत्' से 'पढ़े' लिया गया है—'त्' अलग कर के। हिन्दी 'त्' को कभी-कभी अलग कर के 'जगत्' से 'जग' आदि बनाती स्पष्ट दिखायी देती है। परन्तु 'पठे' का हिन्दी ने 'पढ़े' बना लिया हो; सो बात नहीं है। कारण, यहाँ समर्थित हो जाने पर भी 'कुर्यात्' या 'कुर्वीत' से 'करे' कैसे बन गया, यह भाषा-विज्ञान से अनुमोदित विकासवाद न बता सके गा। इसी तरह 'शक्नुयात्' से 'सके' की निष्पत्ति दुर्घट है। तब फलितार्थ यही निकालना पड़े

गा कि हिन्दी ने 'पठेत्' आदि से ('इय्' का पूर्व अंश) 'इ' ले लिया है। इय् का 'इ' प्रत्ययांश लेने में हिन्दी की लाघव-प्रियता स्पष्ट है। हिन्दी की अपनी धातु-राशि पूर्णतः स्वरान्त है—कर, सुन, उठ, सो, जाग आदि। इन सभी धातुओं में उपर्य्युक्त 'इ' विभक्ति लगा कर और विभिन्न 'पुरुष'-'वचन' आदि में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर के आज्ञा, विधि, प्रश्न तथा सम्भावना आदि प्रकट करने का काम लिया है। धातुओं के साथ लगने पर इस 'इ' में 'पुरुष'-अभिव्यक्ति के लिए जो परिवर्तन हुए हैं, उन का जिक्र पीछे हो चुका है। यहाँ सन्धि-प्रकरण में तो यही बताया जाय गा कि इस दिशा में कहाँ क्या होता है।

'गुण'

'अ' और 'इ' मिल कर 'ए' हो जाता है ; यह सर्व-प्रसिद्ध है। हिन्दी की अकारान्त धातुओं के अन्त्य स्वर ('अ') से मिल कर यह 'इ' गुण-रूप 'ए' बन जाती है और तब अन्त्य व्यञ्जन इसी 'ए' का सहारा लेता है—पढ़े, करे, सुने, उठे, झुके आदि।

'यण्'

'इ' को य् होना भी प्रसिद्ध है। परन्तु हिन्दी तो स्वर-रहित व्यञ्जन अपने रखती नहीं है। इस लिए 'इ' को सस्वर 'य' होता

है, संस्कृत की तरह 'य्' मात्र नहीं। आकारान्त धातुओं से परे 'इ' प्रत्यय को प्रायः 'य' हो जाता है—खाय, जाय आदि।

'इ' को 'ए'

कभी-कभी 'इ' को 'ए' भी हो जाता है; जैसे संस्कृत में 'जेतुम्', चेतुम्' आदि में 'जि' को 'जे' तथा 'चि' को 'चे'। वहाँ प्रकृति के 'इ' को 'ए' है; यहाँ प्रत्यय के 'इ' को—पाए, लाए, निभाए, गँवाए, आए आदि।

उभयथा परिवर्तन

कभी-कभी 'इ' को 'ए' हो जाने पर 'य्' का आगम भी हो जाता है—

१—राम यह काम करने न पाये

२—मा अपने साथ बच्चों को भी लाये

३—लड़के अपना समय गँवायें नहीं

स्पष्ट ही पहले तथा दूसरे उदाहरण में कर्ता एकवचन ही हैं, जिन की (कर्तृवाच्य) क्रियाएँ बहुवचन हो ही नहीं सकतीं। अर्थात् यहाँ 'पाया' तथा 'लाया' के बहुवचन रूप 'पाये, लाये' नहीं हैं; एकवचन ही हैं। तब यह 'य्' कहाँ से आया? 'इ' को 'ए' हो गया, तब 'य्' का उपादान क्या? सो, यहाँ 'य्' का आगम है—ऊपरी आमदनी न जाने कहाँ से फट पड़ी आ कर!

असल में पाया, लाया, गँवाया आदि के बहुवचन रूप—पाये, लाये, गँवाये आदि सामने आते रहते हैं और उसी झनक में लोगों ने विधि-आज्ञा आदि के एकारान्त रूपों में भी 'य्' खोंस दिया—'राम पुस्तकें जरूर लाये'।

परन्तु 'लाये', 'पाये' आदि खटके भी; क्योंकि एकवचन हैं। तब य् को विकल्प से व् भी कर दिया गया---

१—राम यह काम करने न पावे

२—वह पुस्तकें लेता आवे

३—मा अपने बच्चों को भी लावे

इस तरह 'य्' को 'व्' कर देते हैं। यह 'व्'—पूर्वी हिन्दी की झनकार है, जहाँ 'य्' को प्राय: 'व्' होता ही रहता है---गया-गवा, आया-आवा, बनाया-बनावा आदि।

सा, पाए, पाये, पावे यों त्रिविध रूप देखे जाते हैं; यद्यपि हैं 'पाए' आदि ही अधिक अच्छे।

यदि द्विरूप का झमेला मिटाना है, तो फिर 'ई' किंवा 'ए' के साथ ऐसी क्रियाएँ सदा 'य्'-रहित ही लिखना ठीक है। इस से काम सरलतम हो जाय गा। 'चाहिए' जैसी क्रियाओं में 'य्' प्रमाणप्राप्त है ही नहीं। 'लिए' अव्यय में भी 'य्' प्रमाणप्राप्त

नहीं है। 'राम यहां आए', 'गोविन्द चने न चबाए' आदि विधि-आज्ञा आदि की तिङन्त क्रियाओं में भी 'य्' प्रमाणप्राप्त नहीं है। 'आये' कृदन्त बहुवचन में विकल्प से लोप होता ही है---'आए'। 'गयी' का 'गई' भी होता है। तब 'य्'-रहित का ही विस्तार अधिक है। सो, सर्वत्र स्वरमात्र से---आए, गई, लिए आदि लिखना चाहिए। झंझट मिटाने का यही सरल उपाय है और व्याकरण से अनुमोदित भी; प्रवाह-प्राप्त भी यही है।

परन्तु हिन्दी के बड़े-बड़े लेखक तो इस के उलटे वहां भी 'य्' देने लगे, जहां उस का आभास भी प्रमाण-प्राप्त नहीं! वे लिखते रहे---'मैं राम के लिये कपड़े लिये आता हूं', 'तुम्हें ऐसा न चाहिये' इत्यादि। इन लोगों ने 'लिए' तथा 'चाहिए' को गलत बतलाना भी शुरू किया! तब मैं ने 'लेखनकला' में तथा 'व्रज-भाषा-व्याकरण' की भूमिका में बताया कि कहां 'य्' देना गलती है, कहां विकल्प है और वह विकल्प भी क्यों है। तब यह चर्चा हुई कि एक रूप ही रहने चाहिए। परन्तु यह किसी ने न बताया कि एक रूप कौन-सा ग्रहण किया जाय और क्यों? सो, आज प्रसंग आने पर मैं व्यवस्था देने की स्थिति में हूं कि यदि द्विरूपता मिटाना ही है, तो 'य्'-रहित रूप ही 'ई' तथा 'ए' के साथ लिखिए।

'इ' का लोप

'हो' आदि से परे 'इ' का लोप भी देखा जाता है---'नौकर फुर्तीला हो'। कभी लोप नहीं भी करते---'होए'। कभी 'व्' का आगम भी हो जाता है---'होवे'। इन त्रिविध रूपों में लोप वाला रूप ही अधिक समीचीन है।

'अवधी' तथा व्रजभाषा आदि (हिन्दी की बोलियों) में ऐसी जगह 'ई' का लोप नहीं होता; प्रत्युत 'य' हो जाता —होय—

'होनी होय सो होय'

(.जो होनी (भवितव्यता) होनी है, होती है)

इस उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि एक 'होय' सम्भावना में है और दूसरे से वर्तमान काल झलकता है। एक शब्द से दो अर्थ नहीं निकलते—जितने अर्थ, उतने शब्द होने चाहिए। फलतः वर्तमानकालिक 'होय' पृथक् चीज होनी चाहिए और है भी। यह वर्तमानकालिक 'होय' भी 'इ' को 'य' कर के ही बना है, किन्तु यह 'इ' वर्तमानकाल में आती है और उस 'इ' से भिन्न है, जिसका निकास हम ने अभी-अभो पठेत् आदि से बताया है। यह वर्तमानकालिक 'इ' भी तिङन्त विभक्ति है और

'हि' का विकसित रूप है। 'हि' के 'ह्' का लोप हो गया, और 'इ' रह गयी —

अवधी आदि में—

करहि—करता है, या करती है
जाहि—जाता है, या जाती है
आवहि—आता है, या आती है

यों क्रियाएँ प्रसिद्ध हैं, जो पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग में समान रहती हैं।

'ह्' का विकल्प से लोप भी हो जाता है—

करइ—करता है, या करती है
जाइ—जाता है, या जाती है
आवइ—आता है, या आती है

अब इस 'इ' की सन्धियाँ उसी तरह सर्वत्र होंगी, जैसे उस विध्यादि अर्थ देनेवाली 'इ' की बतलायी गयी हैं। अन्तर यह कि इस 'इ' की पूर्व के 'अ' के साथ 'ऐ' के रूप में सन्धि होती है— 'ए' के रूप में नहीं—सो भी विकल्प से—

करै—करता है, या करती है
आवै—आता है, या आती है

परन्तु करै, आवै, आदि वर्तमान काल की क्रियाएँ हिन्दी की कई बोलियों में ही चलती हैं—'राष्ट्र भाषा' में नहीं।

हिन्दी में 'हि' विभक्ति

हिन्दी में यह तिङ्-वंशीय 'हि' विभक्ति ही 'है' क्रिया बनाती है, जो सभी क्रियाओंमें सहायक रूप से रहती है और पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग में कोई भेद नहीं रखती है।

प्राकृत-अपभ्रंश आदि में संस्कृत-क्रियाओं की विभक्तियों के व्यंजन का लोप कर देने की प्रवृत्ति देखी जाती है—

उत्तिष्ठति—उट्ठइ (उठता है या उठती है)

हिन्दी ने 'उट्ठइ' आदि से 'इ' निकाल कर अपनी स्वतन्त्र विभक्ति बना ली, पर पटरी वही रखी, चाल 'तिङ्' की ही—पुल्लिङ्ग - स्त्रीलिङ्ग में समान-रूपता। परन्तु इस 'इ' को हिन्दी ने अपना रङ्ग दिया— 'इ' का 'हि' बना लिया। अर्थात् उस 'इ' में 'ह्' का आगम हुआ। 'इ' प्रायः 'ह्' का आगम कर लिया करती है। हिन्दी का 'एक' सिकुड़ कर 'इक' हो जाता है और अम्बाला से पश्चिम जाकर यह (इक) 'इ' में 'ह्' का आगम करके 'हिक' बन जाता है —

'हिक गल'—एक बात

इस तरह 'और' का सिकुड़ा हुआ रूप 'ओर' और फिर 'ह्' का आगम—'होर'—

होर की कहना है ?

(और क्या कहना है)

सो, प्राकृत-अपभ्रंश की क्रियाओं से 'इ' निकाल कर हिन्दी ने उसे 'हि' बना लिया ! संस्कृत को 'अस्' हिन्दी में सस्वर 'अस' हो जाता है। हिन्दी में सभी धातु-रूप स्वरान्त होते हैं या हो जाते हैं।

'अस्' के 'स' को हिन्दी में 'ह्' हो जाता है; जैसे 'दस' के 'स्' को 'दहला' आदि में 'ह्' होता है। इस 'अह' धातु में हिन्दी ने अपनी वर्तमानकालिक विभक्ति 'हि' लगाई, जो तिङ्वंशीय है और संश्लिष्ट रूप से रहती है। सो,

'अहहि'

क्रिया-रूप बना। इस 'अहहि' के अन्तिम स्वर को सानुस्वार कर के बहुवचन बनाया गया; जैसे संस्कृत में 'न' लगा कर बनाते हैं—पठति, पठन्ति ; इसी तरह—

अहहि (है) से अहहिं (हैं) बहुवचन

अहहिं जे भये जे हुइहैं आगे

'अहहि'-'है'। आगे चलकर इस 'ह्' का वैकल्पिक लोप !

हिन्दी भी तो प्राकृत-अपभ्रंश के ही वंश की है न! व्यञ्जन का लोप प्रवाहप्राप्त है। 'ह्' लगाया था; पर सदा के लिये थोड़े ही! सो, 'ह्' का लोप होकर—

अहइ — अहइं

रूप बने! फिर 'अ' तथा 'इ' में 'ऐ' के रूप में सन्धि। कारण 'अहइ' आदि तो प्राकृत-अपभ्रंश के रूप हैं—इकारान्त क्रियाएँ। हिन्दी ने सन्धि कर के रूप-भेद किया—

'अहै' -- 'अहैं'

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल'

'खड़ी बोली' (राष्ट्रभाषा) ने 'अहै' तथा 'अहैं' के 'अ' का लोप कर दिया—

'है' — 'हैं'

इस तरह सुन्दर, सुडौल और संक्षिप्त रूप 'है' बना। तिङन्त प्रणाली इस की है ही। यही सब क्रियाओं में सहायक रूप से रहती है, तिङन्त क्रिया। 'करता'-'करती' आदि कृदन्त क्रियाओं में लग कर वर्तमान काल के रूप—

करता है —— करती है

इत्यादि इसी 'है' से बनते हैं। राष्ट्रभाषा ने यों 'है' के अतिरिक्त और कोई क्रिया वर्तमानकालिक 'हि' विभक्ति लगा कर नहीं बनायी है! यहाँ भी उस के 'ह' का लोप कर के और

अपने ढँग से सन्धि कर के। तब आद्य स्वर का लोप—'अहहि' से 'है'।

परन्तु हिन्दी की अन्य 'बोलियों' में यह वर्तमानकालिक 'हि' विभक्ति प्रायः सभी धातुओं में लगती है, विकल्प से 'ह्' का लोप तथा सन्धि कर के—

करहि, करइ, करै — करता है, या करती है
पढ़हि, पढ़इ, पढ़ै — पढ़ता है, या पढ़ती है

परन्तु राष्ट्रभाषा ने 'हि' को केवल 'अह' में ही क्यों रखा और क्यों उस तरह कृदन्त रूप ले कर फिर सहायक क्रिया के रूप में 'है' लगाने को पसन्द किया ? उत्तर है स्पष्टता के लिए। कृदन्त से स्त्रीलिङ्ग-पुलिङ्ग का स्पष्ट भेद मालूम हो जाता है, तिङन्त से नहीं—

जाती हूं, जाती हो ?
जाता हूं, जाते हो ?

स्पष्ट प्रतीति है, जो तिङन्त-मात्र से नहीं हो सकती, जब तक कर्ता का निर्देश सर्वनाम के साथ न करें।

सो, स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए ही हिन्दी ने कृदन्त क्रियाएं

ग्रहण को हैं, जो सरल भी हैं। पुरुष-अभिव्यक्ति के लिए सर्वत्र सहायक क्रिया 'है' रहती है। अन्यत्र कर्ता का निर्देश हो जाता है।

ये सब बातें भाषा-विकास से सम्बन्ध रखती हैं, जिन का प्रसंगप्राप्त किंचित् उल्लेख यहाँ कर दिया गया है।

ऐसी जगह 'अ' तथा 'इ' मिल कर 'ऐ' बनना देख कर ही पाश्चात्य भाषा-विज्ञानी विद्वानों ने लिखा है कि हिन्दी की दीर्घाभिमुख प्रवृत्ति है।

समास में स्वर का दीर्घ होना

संस्कृत में 'विश्वामित्र' 'मित्रावरुण' 'सूर्याचन्द्रमसौ' जैसे शब्द मिलते हैं, जिन के 'अ' को न जाने कैसे 'आ' हो गया! 'विश्वमित्र' का 'विश्वामित्र' बन गया! वे ऋषि विश्व के 'अमित्र' (शत्रु) तो थे ही नहीं। तब 'विश्वामित्र' कैसे? मा-बाप ने 'विश्वमित्र' नाम रखा हो और बाद में 'विश्वामित्र' किसी तरह हो गया हो! इस में सन्देह नहीं कि 'अ' को 'आ' हुआ है। यह बात पाणिनि ने भी स्वीकार की है।

हिन्दी में भी दो-चार ऐसे शब्द हैं, जिन के 'अ' को (समास में) 'आ' हो गया है; जैसे—

दीनानाथ, मूसलाधार

दीनों का नाथ—'दीनानाथ'। 'दीन' के 'न' में जो 'अ' है, उसे दीर्घ रूप मिल गया है—'ना'। मूसल के समान धार—'मूसलाधार'। 'ल' का 'अ' दीर्घ हो गया है—'ला'।

इन शब्दों को बदल कर 'दीननाथ' या 'मूसलधार' नहीं कर सकते। परन्तु ऐसे शब्द दो-चार ही हैं। 'सत्यानाश' भी कुछ ऐसा ही है। इसे 'सत्यनाश' कर नहीं सकते और 'सत्ता-नाश' इस की जगह ले नहीं सकता।

बस, इसी तरह की कुछ छोटी-मोटी हिन्दी की अपनी सन्धियाँ हैं। शेष सब संस्कृत का अनुगमन!

'इय्'-आदेश

सन्धि-प्रकरण में एक चीज का उल्लेख और करना है—'इय्' का आदेश।

संज्ञा-प्रकरण में 'इय्'-आदेश को चर्चा हो चुकी है—नदी-नदियाँ, कवि को-कवियों को, राष्ट्रवादी से-राष्ट्रवादियों से; इत्यादि। क्रिया-प्रकरण में भी 'इय्'-आदेश दिखायी देता है और उस का उल्लेख सन्धि-प्रकरण में ही होना चाहिए।

एकस्वर धातु हैं—

१--जी (जीना), २-पी (पीना),
३-ले (लेना), ४-सीं (सींना) आदि

'य' प्रत्यय होने पर इन के रूप हो जाते हैं—

१-जिया, २-पिया, ३-लिया, ४-सिंया आदि

इस का मतलब यह हुआ कि एकस्वर धातु से परे 'य' प्रत्यय होने पर धातु के स्वर को 'इय्' हो जाता है और दो यकार एक जगह श्रवणकटुता पैदा करते हैं ; इस लिए एक का, प्रत्यय के 'य्' का, लोप हो जाता है। जिय्या, पिय्या, लिय्या आदि ठीक नहीं लगते ; इस लिए—जिया, पिया, लिया, रूप हो गये। तब आप कहें गे कि 'इय्' क्यों, 'इ' आदेश की ही कल्पना की जाय। कर लीजिए, कोई विप्रतिपत्ति नहीं ; 'इ' सही। परन्तु अन्यत्र जब 'इय्' का साम्राज्य है, तो उसी को रखने में सुभीता है।

एक शंका यह हो गी कि 'पिया करता हूँ' प्रयोग क्यों नहीं होता ? 'जा' धातु में भी तो एक ही स्वर है न ? तब 'जाया' को 'जिया' क्यों न हुआ ?

उत्तर में निवेदन है कि हिन्दी सदा भ्रम-सन्देह से दूर रहती है। 'जी' (जीना) धातु का रूप 'य' प्रत्यय परे होने पर 'जिया' होता है—'बुड्ढा बहुत दिन जिया' 'जिया करती है दुनिया अन्न

से'। सो, यदि 'जा' (जाना) धातु के स्वर को 'इय्' (किंवा 'इ') हो जाता, तो भ्रम बढ़ता। इसी लिए, एक स्वर होने पर, भी, 'जा' धातु के स्वर को 'इय्' नहीं होता। 'जाया करता है' में 'जाया' सामान्य प्रयोग है; इस से भूतकाल के 'य' प्रत्यय को भिन्न बताने के लिए वहाँ 'जा' को 'ग' हो जाता है—'गया'। एक आदेश के बाद फिर दूसरा आदेश (इय्) नहीं होता। 'जाया करेगी' और 'गयी' में कितना अन्तर है; इस एक गत्यर्थक क्रिया में हिन्दी ने प्रकट कर दिया। सामान्य 'य' तथा भूतकालिक कर्तृवाच्य 'य' में अन्तर है; यह तत्त्व स्पष्ट कर दिया गया। अन्य सभी धातुओं में इसी तरह विभिन्न आदेशों का झमेला नहीं बढ़ाया गया।

एक बात और। 'कर' (करना) धातु से 'य' प्रत्यय होने पर भी 'इय्' होता है; यद्यपि यह धातु एकस्वर नहीं, अनेक—स्वर है। 'किया' में देखिए, 'इय्' स्पष्ट है। यह क्यों? एक-स्वर का नियम कहाँ रहा?

उत्तर है कि यह अपवाद में समझिए। 'कर' धातु से 'य' प्रत्यय होने पर धातु के प्रथम या आद्य स्वर को 'इय्' हो जाता है। य् का तथा धात्वंश 'र' का लोप हो गया—'किया'।

परन्तु अन्य ऐसी धातुओं को 'इय्' नहीं होता—

भरा, धरा, मरा, फरा (फला), तरा आदि प्रयोग होते हैं—'य्' का लोप कर के। बल्कि 'धरा' के साथ 'कर' भी अपना रूप 'करा' ही प्रायः रखती है—'करे-धरे पर पानी फिर गया'। कोई-कोई 'परिष्कारक'—'किये-धरे पर' ऐसा लिखते-बोलते हैं, जो ठीक नहीं जमता। जैसे—'जो करे गा, सो भरे गा' की जगह 'जो करे गा, वह भरे गा' अच्छा नहीं लगता। कहीं-कहीं बोल-चाल में भी—'करा तो बहुत कुछ है' ऐसा बोलते भी हैं। कहीं 'य्' के साथ 'कस्या' भी बोलते हैं। परन्तु राष्ट्रभाषा ने 'किया' रूप ही लिया है। सो, यह एक अपवाद समझिए, उस नियम का। व्यापक नियम वही है कि एकस्वर धातु के स्वर को 'इय्' या 'इ' हो जाता है, जब 'य' प्रत्यय परे हो। 'इय्' होने पर 'य्' का लोप हो जाता है।

* समाप्त *